* ओ३म् *

वैदिक कर्म-विधि



श्रीमती प्रकाशवती बुग्गा शास्त्री
एम०ए०, प्रभाकर

147/4



॥ ओ३म् ॥

वैदिक कर्म-विधि

(सन्ध्या, ईश्वर-स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण,
हवन, पञ्च यज्ञ आदि के मन्त्र एवं भजनों का संग्रह)



लेखिका :

प्रकाशवती बुग्गा शास्त्री

एम०ए०, प्रभाकर, सिद्धांत शास्त्री

१४, जैन मन्दिर, राजा बाजार, नई दिल्ली।

[...म वार] [संवत् २०४७

प्रकाशक :

प्रकाशवती बुग्गा शास्त्री, एम०ए०
१४ जैन मन्दिर, राजा बाजार, नई दिल्ली-१

संस्करण : प्रथम
संवत् : २०४७
सृष्टि संवत् : १९६०८५३०९१

मूल्य : १०.०० रुपये

मुद्रक :

वैदिक प्रेस
कैलाशनगर, दिल्ली-३१ फोन : २२४६६४६

विषय सूची



पुस्तक सूची



सन्ध्या यज्ञ

नोपतिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ मनु०

जो व्यक्ति प्रातः सायं सन्ध्यावेला में सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्र के समान द्विजों के कर्मों से बहिष्कृत कर देना चाहिए ।

उद्यन्तमस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ तैत्ति० २।२।२

उदय और अस्त होते सूर्य के समय सन्ध्या का ध्यान करता हुआ विद्वान् सभी प्रकार के भद्र (कल्याण) को प्राप्त कर लेता है ।

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम ॥
अथर्व० १९।५५।३, ४

सायं किया यज्ञ प्रातः काल तक सौमनसस्य=अच्छे मन का देने वाला है । इसी प्रकार प्रातः किया यज्ञ सायं काल तक सुमनस् भाव को देता है । उस श्रेष्ठ मन द्वारा सभी प्रकार के ऐश्वर्यों को, श्रेष्ठ शरीर और लम्बी आयु को प्राप्त कर सकते हैं ।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । (यजुर्वेद)

यह यज्ञ भुवन की नाभि है ।

हरितं होतृषदनम् ॥ (अथर्व)

यज्ञ करने वाले का घर सदा हरा भरा रहता है ।

जिस प्रकार माता के गर्भ में बालक नाभि से जुड़ा जीवन प्राप्त करता है । उसी प्रकार संसार की नाभि यज्ञ को विना किये, विना उससे जुड़े मृतक भाव को प्राप्त होता है ।

यज्ञ=यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञ विष्णु=परेश है । देवपूजा, संगतिकरण, दान यज्ञ हैं । और संगतिकरण—

सुतदारा अरु लक्ष्मी सब काहू के होय ।
सत्सङ्गति अरु हरि-कथा तुलसी दुर्लभ दोय ॥

ईश्वर, जीव, प्रकृति सत् हैं । इन में सत्यस्वरूप प्रभु की सङ्गति और सज्जनों की सङ्गति मनुष्य को अवश्यमेव श्रेष्ठ बनाती हैं । वह सत्संगति अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ।



भूमिका

शं नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ।।

मनुष्य कहलाने वाला प्राणी वस्तुतः तीन तत्त्वों का संयोग है—शरीर मन और आत्मा । इन तीनों का स्वस्थ तथा सशक्त रहना मानव जीवन की उन्नति तथा सुख के लिए अनिवार्य है ।

शरीर को पुष्टि के लिए उत्तम अन्न तथा मन की शक्ति के लिए ज्ञान व आत्मा की उन्नति के लिए निरन्तर सन्ध्या व कर्त्तव्य-पालन अपेक्षित है । यह तीनों प्रकार की शक्ति हमारे निरंतर सन्ध्योपासना हवन आदि से ही प्राप्त हो सकती है । इसी दृष्टिकोण से ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में पंच यज्ञों का विधान किया है ।

निस्संदेह आर्यसमाज के द्वारा सन्ध्या हवन का पर्याप्त प्रचार हुआ है परन्तु सन्ध्या हवन के मन्त्रों के उच्चारण तथा अर्थों को न जानने से इसका पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता ।

इसी लक्ष्य को दृष्टि में रख कर मैंने इस पुस्तक में सन्ध्या हवन, प्रार्थना मन्त्र, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण आदि दैनिक प्रयोग के मंत्रों के साथ-साथ कुछ विशेष मन्त्रों के अर्थ भी लिखे हैं । जिससे धर्म-प्रेमी, भाई-बहिन सन्ध्या हवन का पूरा-पूरा आनन्द तथा लाभ उठा सकें ।

जन्म दिन आदि विशेष शुभावसरों पर जो मन्त्र बोले जाते हैं उनको भी लिख दिया गया है।

इसके अतिरिक्त ईश्वर-भक्ति के कुछ गीत तथा कविताएं लिखी हैं।

हम प्रायः बच्चों तथा अन्य लोगों को कहते रहते हैं सन्ध्या करो, हवन किया करो परन्तु जब तक उनके हाथ में पुस्तक न दी जाए जिसमें उन्हें मन्त्रों तथा अर्थों का दर्शन न हो तो वे कैसे इस को अपना सकते हैं। पुस्तक सार्थक हो, सुन्दर हो, उपयोगी हो तभी वह सर्वप्रिय हो सकती है। मैंने इसी अभिलाषा से इस पुस्तक का संकलन किया है मन्त्रों के अर्थ भी लिखे हैं। विद्वान् लोगों के हाथों में यह पुस्तक जाएगी। यदि इसमें कुछ त्रुटियां रह गईं तो भविष्य में सुधार दी जाएंगी। सन्ध्या के विषय पर कई पुस्तक लिखी गई हैं परन्तु मैंने इसको इतना सरल तथा सुबोध बनाने की चेष्टा की है कि छोटे-से छोटा बच्चा भी जो केवल हिन्दी मात्र पढ़ सकता है इसे भली प्रकार समझ कर सन्ध्या हवनादि वैदिक कृत्यों में श्रद्धाभाव प्राप्त कर सके।

समर्पण

सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्द प्रभु की पावन प्रेरणा से मैंने यह पवित्र प्रयास किया है, वही इसे सफल बनाए। इसलिए उसी सर्वव्यापक की सेवा में मेरा समर्पण है। उसी का उसको अर्पण है।

प्रकाशवती शास्त्री

जीवन परिचय

श्रीमती प्रकाशवती (बुग्गा) का जन्म लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। इनके पिता श्री अनन्तराम खन्ना धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। वह आर्यसमाजों के सत्संगों में अपनी प्रिय पुत्री प्रकाशवती को साथ ले जाया करते थे। पिता जी की इच्छा थी कि मेरी पुत्री पर शुभ संस्कार पड़े।

प्रकाशवती ने चार वर्ष की आयु से ही विद्या अध्ययन प्रारम्भ किया और ये पढ़ाई में अच्छी रुचि रखती थीं। समय की गति के साथ-साथ अग्रसर होती रहीं। आगे बढ़ते हुए प्रभाकर, शास्त्री, एम० ए० तथा बी० टी० पास करके सिद्धान्त शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। साथ ही अध्यापन कार्य भी प्रारम्भ किया।

सन् १९३५ में आर्यसमाज हनुमान् रोड पर स्थित एक प्राईमरी पाठशाला का कार्य भार संभाला। अब यह स्कूल प्राईमरी से सीनियर स्कूल तक पहुँच गया है। कन्याओं की संख्या अधिक होने के कारण यह स्कूल डाक्टर लेन के भवन में ले गये, वहां आज भी प्राईमरी विभाग चल रहा है। राजा बाजार के पास एक जमीन प्राप्त कर आर्यसमाज हनुमान् रोड तथा पिताश्री अनन्तराम के प्रयत्न से आज वहां एक विशाल भवन बन गया है जिसमें हजारों की तादाद में कन्याएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

श्रीमती प्रकाशवती रघुमल आर्य कन्या स्कूल की बहुत समय तक प्रधानाध्यापक के स्थान पर कार्यरत रहीं।

आज वह पाठशाला से निवृत्ति प्राप्त कर आर्यसमाज की सेवा में जुट गई हैं। अब वे दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा उपदेशिका के रूप में दिल्ली की विभिन्न आर्यसमाजों में वैदिक धर्म प्रचार करने में संलग्न हैं।

भाषण प्रवचन के अतिरिक्त उन्हें लेखन कार्य में भी रुचि है। उनके लेख अनेकों पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। उनकी वेदों के प्रति अत्यधिक श्रद्धा व प्रेम है, और भजन, कविताएं लिखने का पर्याप्त शौक व रुचि है। उनका प्रत्येक भजन, कविता तथा भाषण वैदिक धर्म, भक्ति-भाव तथा देश-प्रेम से ओत-प्रोत होता है।



प्रातः काल के मन्त्र

मन्त्र—प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम। ऋ० ७।४१।१।

प्रकाश तथा ऐश्वर्य के दाता
अग्निदेव इन्द्र को करें प्रणाम।
जग का स्वामी सब में व्यापक,
कष्ट निवारक शांति का धाम।
दुष्ट जनों को दण्ड देकर
वेद ज्ञान से करे कल्याण।

(२) प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह। ऋ० ७।४१।२।

सुबह सवेरे अमृतवेले हम प्रभु का भजन करें।
लोक-लोक का जो रक्षक है याचना उसकी करें।
राजा रंक सुखी दुखियारे जिसकी पूजा करते हैं।
ऐसे दानी धनी दाता का ध्यान सदा हम धरते हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥

ऋ० ७।४१।३

उत्तम साधन से उत्तम धन
देने वाले हे भगवान् ।
ज्ञान कर्म सद्बुद्धि देकर
सब का ही करना कल्याण ।
भण्डार तू ही धन सम्पत्ति का है
धन वैभव का करना दान
गऊएं, घोड़े भी देना बलवान्
पुत्र पौत्र परिवार महान् ।

मन्त्र —उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत
प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य
वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ऋ० ७।४१।४।

अर्थ—हे ईश्वर अपने पुरुषार्थ से ।
इसी काल में धन को पावें ।
दोपहर समय जो काम करें ।
विजय लक्ष्मी उसमें भी लावें ।
सूर्य की किरणें जब चमकें
दिव्य गुणों से बुद्धि चमकावें ।

मन्त्र—भग एव भगवाँ अस्तु देवा-
स्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति
स नो भग पुर एता भवेह ॥ ऋ० ७।४१।५।

अर्थ —ऐश्वर्य के भण्डार तुम्हीं हो, तुझ को ही हम सदा मनावें ।
बार-बार हम तुम्हें बुलाते, अपनी डोर हम तुम्हें थमावें।

मन्त्र—समध्वरायोषसो नमन्त, दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाऽश्वा वाजिनम् आवहन्तु ॥
ऋ० ७।४१।६।

अर्थ— जैसे तीव्रगति के घोड़े, अच्छे मार्ग पर ले जाएं।
उषाकाल की लाल रश्मियां, उत्तम धन को ही बरसाएं
प्रभातकाल की चमकीली वेला, यश कराने ही नित आए
प्रेम प्यासे साधक मन को, प्रभु के ही दर्शन करवाएं।

अश्वावती गोमतीनं उषसो वीरवतीः। सदमुच्छन्तु भद्राः ॥
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ऋ० ७।४१।७।

कल्याण-भरी यह उषा रानी,
गाय घोड़े तो दे देती।
वीर पुत्रों का कर पोषण,
पाप पाश भी हर लेती।
ओस गिराती तृण चमकाती,
दूध घी की वर्षा करती।
सब की रक्षक देवी बनकर,
प्रभु भक्तों में सुख भरती ॥



प्रवेश पाठ

(प्रतिभा अपने अध्ययन में तल्लीन है, सुषमा का प्रवेश)

सुषमा—नमस्ते बहिन प्रतिभा।

प्रतिभा—नमस्ते बहिन आओ, आज प्रातःकाल ही कैसे आना हो गया ?

सुषमा—एक सन्देह मेरे मस्तिष्क में रात भर घूमता रहा, उसी का निवारण करवाने के लिए तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हुई हूँ।

प्रतिभा—मैं ही ऐसी कौन बड़ी विदुषी हूँ ?

सुषमा—कुछ भी हो मुझे विश्वास है कि तुम मेरी बात का अवश्य उत्तर दोगी।

प्रतिभा—अच्छा कहो क्या कहना चाहती हो ?

सुषमा—मैं यह कहना चाहती हूँ कि हमारे स्कूल में जो प्रतिदिन सन्ध्या करवाई जाती है उससे क्या लाभ ? इससे तो अच्छा है कि हम वही समय पढ़ने में लगाएं।

प्रतिभा—ठीक है, मैं कहती हूँ हम दोनों समय भोजन बनाने और करने में लगाते हैं उससे क्या लाभ ? यदि हम वही समय अपने अन्य कार्यों में लगाएं तो कितना लाभ हो ?

सुषमा—वाह बहिन यह कैसे हो सकता है ? यदि हम ऐसा करें तो हम जी ही कैसे सकते हैं ? और भोजन करने में तो हमें बड़ा आनन्द आता है।

प्रतिभा—यह दोनों बातें सन्ध्या पर भी घटती हैं, हम सन्ध्या के बिना भी जी नहीं सकते और इसमें आनन्द भी मिलता है और भोजन से भी अधिक।

सुषमा—सो कैसे ? जरा समझा कर कहो।

प्रतिभा—देखो बहिन सन्ध्या रूपी भोजन हमारे शरीर को ही नहीं वरन् आत्मा को भी जीवित रखता तथा उन्नत बनाता है। जो मनुष्य सन्ध्या नहीं करता वह देखने में ही जीवित दिखाई देता है उसकी आत्मा तो मर चुकी है। संसार में उसका जीवन एक पशु-पक्षी से अच्छा नहीं।

सुषमा—अच्छा तो यह भी बताओ कि आनन्द कैसे आता है? हमें तो कोई आनन्द नहीं आता।

प्रतिभा—तुम्हें आनन्द न आने के दो कारण हैं। प्रथम तो तुम्हें सन्ध्या मन्त्रों के अर्थ नहीं आते, दूसरे तुम्हारे मन में एकाग्रता नहीं होती।

सुषमा—यह तो मैं भी मानती हूँ पर इसका उपाय क्या है?

प्रतिभा—उपाय तो सीधा है पर उसके लिए प्रयत्न करना पड़ेगा।

सुषमा—क्या करना होगा?

प्रतिभा—सन्ध्या के मन्त्रों के अर्थ सहित घर में दोनों समय सन्ध्या करो। कुछ समय के पश्चात् अर्थ स्पष्ट हो जाएंगे। तब तुम्हारा मन भी लगेगा और आनन्द भी आएगा। ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास उत्पन्न होगा।

सुषमा—क्या सन्ध्या से हमारे शरीर को भी कोई लाभ होता है?

प्रतिभा—निस्सन्देह।

सुषमा देखो एक तो सन्ध्या प्रातः सायं सूर्य की ओर मुंह करके की जाती है। इससे हमारी आंखों को अत्यन्त लाभ पहुंचता है। दूसरे आसन पर सीधे होकर बैठने से, मन्त्रोच्चारण से, प्राणायाम से शरीर के बाहर तथा अन्दर के अंगों का भलीभांति व्यायाम होता है। इसके अतिरिक्त मन के उत्तम विचारों का शरीर के ऊपर उत्तम प्रभाव पड़ता है।

सुषमा—अच्छा अब यह बताओ कि हवन करने से क्या लाभ है?

प्रतिभा—हवन के लाभ तो बहुत हैं पर संक्षेप में इतना ही जान लो कि एक तो इससे वायु शुद्ध होती है, पवित्र मन्त्रों के उच्चारण से मन शुद्ध होता है, मिल कर हवन करने से परिवार तथा समाज में परस्पर प्रेम की भावना बढ़ती है। अपने देश की संस्कृति तथा सर्वोत्तम साहित्य वेद की रक्षा होती है।

सुषमा—प्रतिभा बहिन एक बात और बता दो फिर मैं चली जाऊंगी।

प्रतिभा—सहर्ष पूछो।

सुषमा—जब हम घर में सन्ध्या कर लें तो स्कूल में करने की क्या आवश्यकता रह जाती है ?

प्रतिभा—इसके दो उद्देश्य हैं। एक तो समस्त कन्याओं को सन्ध्या-मन्त्रों का उच्चारण आदि भली प्रकार ज्ञात हो जाता है, दूसरे प्रातः सन्ध्या में मन को एकाग्र करने का अभ्यास करें ताकि दिन भर पढ़ने में भी अच्छी प्रकार मन लगा सकें। ईश्वर के प्रति प्रेम तथा श्रद्धा बढ़े।

सुषमा—धन्य हो बहिन यह तो आज तुम ने मुझे बहुत अच्छी बातें बताई हैं, मुझे तो कभी इन बातों का ध्यान ही न आया था। सचमुच तुम ने तो मेरी आंखें खोल दी हैं। अब तो मैं घर में दोनों काल सन्ध्या किया करूंगी, और स्कूल में भी सन्ध्या के समय पर अवश्य पहुंच जाया करूंगी।

प्रतिभा—हां एक बात याद रखो, पुस्तक में देखकर उतने दिन ही सन्ध्या करना जितने दिन अर्थ न आये। उसके पश्चात् आंखें बन्द करके, अर्थों में मन लगा के धीरे अथवा ऊंचे स्वर से मन्त्रोचारण करना।

सुषमा—अच्छा बहिन, अब मैं जाती हूँ मैंने तुम्हारा बहुत समय लिया, इसके लिए बहुत धन्यवाद ! अच्छा नमस्ते।

प्रतिभा—(उठकर) नमस्ते बहिन (सुषमा का प्रस्थान)

प्रथम पाठ

सन्ध्या

आचमन मन्त्र

इस मन्त्र से हाथ में जल लेकर कण्ठ शुद्धि और हृदय की शीतलता के लिए विशेष प्रकार से जल पिया जाता है, इसलिए इस मन्त्र का नाम आचमन मन्त्र है।

मन्त्र—

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० ३६।१२।

ओं	=	रक्षा करने वाला।
शम्	=	कल्याण करने वाला।
नः	=	हमारे लिए।
देवीः	=	दिव्य गुणों वाला, प्रकाशरूप।
अभिष्टये	=	मनोवांछित फल के लिए।
आपः	=	जल, सर्वव्यापक प्रभु।
भवन्तु	=	होवें।
पीतये	=	पूर्णानन्द (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए।
शंयोः	=	सुख, शान्ति और कल्याण की।
अभि	=	चारों ओर से।
स्रवन्तु	=	धीमी-धीमी वर्षा करें।
नः	=	हम पर।

भावार्थ—

सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक परमेश्वर हमें मनोवांछित पदार्थ दे और पूर्ण आनन्द मुक्ति भी दे। हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की

वर्षा करे। जल के पक्ष में भी यही प्रार्थना है कि यह जल दिव्यं गुणों वाला है यह भी हमारे अभीष्ट को सिद्ध करने वाला हो। वर्षा सदा ठीक समय पर और उचित परिमाण में हुआ करे।

इन्द्रिय स्पर्श (अंगों को छूना)

इन मन्त्रों को बोलते समय प्रत्येक अंग को जल से छुआ जाता है इसलिए इस मन्त्र का नाम इन्द्रिय स्पर्श है।

मन्त्र—

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठः। ओ३म् शिरः। ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओ३म् करतलकरपृष्ठे॥

शब्दार्थ—

ओं वाक् वाक्	=	मेरी वाणी पवित्र हो।
ओं प्राणः प्राणः	=	मेरी सूंघने की शक्ति पवित्र हो।
ओं चक्षुः चक्षुः	=	मेरी दृष्टि पवित्र हो।
ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्	=	मेरे कान पवित्र हों।
ओं नाभिः	=	मेरी नाभि (पाचन शक्ति) पवित्र हो।
ओं हृदयम्	=	मेरा हृदय (भाव) पवित्र हो।
ओं कण्ठः	=	मेरा कण्ठ (स्वर) पवित्र हो।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम्	=	मेरी भुजाएं यश और बल वाली हों। अर्थात् मेरे कार्य, यश और बल वाले हों।
ओं करतलकरपृष्ठे	=	मेरी हाथ की हथेली और उसका पृष्ठ भाग पवित्र हो।

भावार्थ—

हे ईश्वर ! आपकी कृपा से मेरी बोलने की शक्ति, नासिका द्वार अर्थात् सूंघने की शक्ति, श्वास प्रक्रिया, दोनों आंखें अर्थात् देखने की शक्ति, कान अर्थात् सुनने की शक्ति मरणपर्यन्त विद्यमान रहे। मेरी पाचन शक्ति ठीक रहे। हृदय समुद्रवत् गम्भीर तथा विशाल हो। गले से मधुर स्वर निकले। दिमाग स्वस्थ रहे। भुजाएं यश और बल कमाने वाले काम करें। हाथ स्वस्थ रहें। मुझे मेरी शक्ति और पवित्रता दीजिए कि मैं किसी भी अंग से कभी भी कोई पाप न करूं।

मार्जन मन्त्र

इस मन्त्र में अंगों के शुद्ध करने के साधन बताए हैं, इस कारण इसका नाम मार्जन मन्त्र है।

मन्त्र—

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि।
ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ॐ स्वः पुनातु कण्ठे।
ॐ महः पुनातु हृदये
ॐ जनः पुनातु नाभ्याम्।
ॐ तपः पुनातु पादयोः।
ॐ सत्यम् पुनातु पुनः शिरसि।
ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

शब्दार्थ—

भूः पुनातु शिरसि = जगदाधार प्रभु मेरे सिर को पवित्र करो।
भुवः पुनातु नेत्रयोः = दुःखनाशक प्रभु मेरे नेत्रों को पवित्र करे।

स्वः पुनातु कण्ठे = सुख रूप प्रभु मेरे कण्ठ को पवित्र करें।

महः पुनातु हृदये = महान् प्रभु मेरे हृदय को पवित्र (विशाल) करें।

जनः पुनातु नाभ्याम् = उत्पन्न करने वाला प्रभु मेरी नाभि (पाचन शक्ति) को पवित्र करें।

तपः पुनातु पादयोः = पापियों को दण्डदाता मेरे पैरों को पवित्र करें अथवा दृढ़ता प्रदान करें।

सत्यं पुनातु पुनः शिरसि = सत्यरूप प्रभु मेरे मस्तिष्क को पवित्र रक्खें।

खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र = आकाश की भांति सर्वव्यापक प्रभु मुझे सब ओर से पवित्र करें।

भावार्थ—

इस मन्त्र से समस्त अंगों को पवित्र और बलवान् रखने वाली सम्पूर्ण शक्तियों के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। अर्थात् हे भगवन् आप सर्वाधार हैं अतः मेरा सिर जो मेरे शरीर का आधार है उसे अपनी धारण शक्ति प्रदान करें। आप सुख रूप, दुखनाशक हैं; मेरे नेत्रों को भी परदुःखनाशक शक्ति प्रदान करें।

हे सुखरूप प्रभु आप मेरे कण्ठ को पवित्रता प्रदान करें ताकि मेरा कण्ठ स्वर दूसरों को सुख पहुचाने वाला हो। हे महान् प्रभो मेरे हृदय को (विशाल) पवित्र करें ताकि इसमें विश्वप्रेम का संचार हो। हे उत्पादक प्रभो मेरे नाभि-प्रदेश अर्थात् पाचन-शक्ति को पवित्र, स्थिर कीजिए ताकि मेरा स्वास्थ्य सदा उत्तम बना रहे, स्वस्थ मनुष्य ही संसार को पूर्णतया सुखी बना सकता है। हे तप रूप, दृढ़ नियन्ता

उत्तम शासक प्रभो ! मेरे पैरों को पवित्र कीजिए। सन्मार्ग पर चलने की दृढ़ता दीजिए। पुनः एक बार प्रार्थना है कि प्रभो आप अपने सत्य रूप से मेरे शिर को पवित्र करें क्योंकि हमारे जीवनाधार सिर में सत्य की शक्ति रहने पर ही वह हमारे जीवन को भली प्रकार चला सकता है। अन्त में सब प्रकार की शुद्धि के लिए प्रार्थना की गई है, हे सर्वव्यापक प्रभो आप मुझे सर्वदा सब ओर से पवित्र करते रहें। ईश्वर को वास्तविक रूप में सत्य मानने वाला मनुष्य कभी भी पाप आचरण नहीं कर सकता यह भाव है।

प्राणायाम मन्त्र

इस मन्त्र के उच्चारण के साथ प्राणायाम की क्रिया की जाती है इसलिए इस मन्त्र का नाम प्राणायाम मन्त्र है।

मन्त्र—

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः।
ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः।
ओ३म् सत्यम्। तैत्ति० १०।२७

शब्दार्थ—

भूः	=	सर्वाधिकार, सत्।
भुवः	=	दुःखनाशक, चित्।
स्वः	=	सुखरूप, आनन्दस्वरूप।
महः	=	महान्, सब से बड़ा।
जनः	=	सब को उत्पन्न करने वाला।
तपः	=	दुष्टों को दण्ड देने वाला।
सत्यम्	=	सत्य रूप, अविनाशी।

भावार्थ—

हे सर्व रक्षक प्रभो ! आप सर्वाधार, दुःख नाशक सुखरूप हैं। आपको सत्+चित्+आनन्द=सच्चिदानन्द भी कहते हैं। आप महान् हैं, सब को उत्पन्न करके, दुष्टों को दण्ड भी देते हैं। आप सदा सत्यरूप अविनाशी हैं। इस मन्त्र का मानसिक जप करते हुए अर्थों पर मन एकाग्र रखते हुए प्राणायाम की क्रिया करते रहना चाहिए। इससे शरीर तथा मन दोनों शुद्ध तथा बलवान हो जाते हैं।

अघमर्षण मन्त्र

इस मन्त्र के द्वारा विशेष रूप से पाप नाश होते हैं इसलिए इस मन्त्र का नाम है, अघ=पाप, मर्षण=नाश करने वाला।

मन्त्र

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः॥
ऋ० १०।१९०।१

शब्दार्थ—

ऋतम्	=	वेद शास्त्र, नियम।
च	=	और।
सत्यम्	=	संसार को उत्पन्न, पालन करने वाला अविनाशी कारण।
अभि	=	चारों ओर से।
इद्धात्	=	प्रकाश स्वरूप से।
तपसः	=	ज्ञानरूप, तप से।
अधि+अजायत	=	उत्पन्न हुआ।
ततः	=	इसके पश्चात्, उसी से, चैतन्य शक्ति से।

रात्रि	=	महा प्रलय, जल, अन्धकार।
समुद्रः	=	परमाणु रूप में पृथ्वी का समुद्र।
अर्णवः	=	आकाश का सागर=मेघ।

भावार्थ—

इस मन्त्र में यह बताया गया है कि परमात्मा ने किस क्रम से इस जगत् को उत्पन्न किया। उसी ज्ञानमय, प्रकाशरूप प्रभु ने सब से पहले ऋत को नियम को वेद रूप में प्रकट किया और सत्य को सृष्टि के कारण सत्, रज, तम तीनों गुणों को प्रकट किया। इसके पश्चात् अन्धकार को, समुद्र को और मेघ को बनाया। इसके पश्चात्—

मन्त्र—

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥

ऋ० १०।१९०।२

शब्दार्थ—

समुद्रात्	=	समुद्र से।
अर्णवात्	=	मेघ से (आकाश का समुद्र)
अधि	=	पीछे।
सम्वत्सरः	=	वर्ष आदि काल विभाग।
अजायत	=	उत्पन्न हुआ।
अहोरात्राणि	=	दिन, रात।
विदधत्	=	बनाए।
विश्वस्य	=	जगत् का।
मिषतः	=	सहज स्वभाव से।
वशी	=	वश में रखने वाले, प्रभु ने।

भावार्थ—

सकल संसार को अपने वश में रखने वाले परमात्मा ने अपने सहज स्वभाव से जलकोष रचने के अनन्तर, वर्ष, दिन, रात आदि काल के विभाग बनाए। पृथ्वी में घूमने की शक्ति उत्पन्न की। इसके पश्चात्—

मन्त्र—

ओ३म् सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ० १०।१९१।३

शब्दार्थ—

सूर्य्याचन्द्रमसौ	=	सूर्य्य और चन्द्र को।
धाता	=	धारण करने वाले ने।
यथापूर्वम्	=	पहले के समान, जैसी इससे पूर्व सृष्टि में बनाया था।
अकल्पयत्	=	बनाया।
दिवम्	=	द्यौ लोक को (चमकने वाले ग्रह नक्षत्र आदि को)
पृथिवीम्	=	भूमि लोक को।
अन्तरिक्षम्	=	आकाश (शून्य स्थान) को
अथः	=	और।
स्वः	=	भूमि तथा द्यौ लोक के अन्य लोक लोकान्तरों को।

भावार्थ—

सारे जगत् को धारण करने वाले भगवान् ने सूर्य, चन्द्र को जैसे पूर्व सृष्टि में रचा था वैसा इस संसार में भी बनाया। द्यौलोक, ग्रह नक्षत्रादि को पृथिवी, आकाश और अन्य अनेक लोक लोकान्तरों

को भी बनाया। सृष्टि रचना वर्णन करने से ईश्वर की महानता पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है, महानता ही मनुष्य को भयभीत करके पाप से दूर रखती है। इसलिए यह मन्त्र पाप नाशक (अघमर्षण) कहलाता है।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

इन मन्त्रों के पाठ के द्वारा मन से ईश्वर का चारों ओर, ऊपर नीचे ध्यान किया जाता है, इसलिए इस मन्त्र का नाम मनसा-परिक्रमा अर्थात् मन से घूमना है।

मन्त्र—

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽदित्या
इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम
इषुभ्यो नम एभ्योऽअस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं
द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्ववेद ३।२७।१

शब्दार्थ—

प्राची	=	पूर्व
दिग्	=	दिशा का
अग्नि	=	प्रकाशरूप, सब का नेता, प्रभु
अधिपतिः	=	स्वामी
असितः	=	अन्धकार से, अज्ञान से।
रक्षिता	=	रक्षा करने वाला है।
आदित्या	=	किरणों,
इषवः	=	बाण, साधन।
तेभ्यो	=	उन सब को।
नमो	=	हम नमस्कार करते हैं।

अधिपतिभ्यो	=	स्वामियों को (ईश्वर को शक्तियों को)
नमो	=	प्रणाम हो।
रक्षितृभ्यो नम	=	रक्षा करने वालों को प्रणाम हो।
इषुभ्यो नम	=	बाणों को, रक्षा के साधनों को प्रणाम हो।
एभ्योऽस्तु	=	इन सबों को ही नमस्कार हो।
यो	=	जो।
अस्मान्	=	हम को, हमारे साथ।
द्वेष्टि	=	वैर करता है।
यं	=	जिसको, जिससे।
वयं	=	हम सब
द्विष्मस्	=	द्वेष करते हैं।
तं	=	उसको, उस द्वेष भाव को।
वो	=	आपके।
जम्भे	=	न्याय रूपी डाढ़ पर, न्याय धार पर
दध्मः	=	रखते हैं। छोड़ते हैं।

भावार्थ—

पूर्व दिशा में सूर्य उदय होता है। अतः ईश्वर उसी रूप में पूर्व दिशा का स्वामी है। वह हमारे सूर्य के समान ही अन्धकार से, अज्ञान से रक्षा करता है। जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने के साधन किरणें हैं। उसी प्रकार परमपिता के पास हमारे अज्ञान को दूर करने के साधन विद्वान् हैं। अतः हम सब का उन स्वामियों को, रक्षा करने वालों को, उनके रक्षा के साधनों को, नमस्कार हो। अन्त में हम

ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे न्यायकारी जो मनुष्य हम से वैर रखता है अथवा हम किसी के लिए द्वेषभाव धारण किए हुए हैं, उसको आपके ही न्याय पर छोड़ते हैं। परस्पर बदले की भावना के नाश के लिए यह प्रार्थना है क्योंकि यही मनुष्य का सब से बड़ा अज्ञान है।

मन्त्र—

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व० ३।२७।२

शब्दार्थ—

दक्षिणा	=	दक्षिण।
दिग्	=	दिशा का।
इन्द्रः	=	ऐश्वर्य देने वाला प्रभु।
अधिपतिः	=	स्वामी।
तिरश्चि	=	टेढ़े स्वभाव वाले कुटिल व्यक्तियों से, टेढ़ी चाल वाले सर्पादि विषैले जीवों से।
राजी	=	पंक्ति, समूह (से)।
रक्षिता	=	रक्षा करने वाला।
पितरः	=	अनुभवी विद्वान्।
इषवः	=	बाण, साधन।

शेष पूर्ववत्—

भावार्थ—

हे प्रभो आप परम ऐश्वर्य के स्वामी हैं, इसलिए आपका नाम

इन्द्र है। आपको दक्षिण दिशा का स्वामी माना है। आप सर्वदा ऐसे व्यक्तियों से जो कुटिल हैं और ऐसे जीवों से जो टेढ़े चलते हैं, अत्यन्त विषैले होते हैं, हमारी रक्षा करते हैं।

शेष पूर्ववत्

मन्त्र—

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अथर्व० ३।२७।३

शब्दार्थ—

प्रतीची	=	पश्चिम।
दिग्	=	दिशा का।
वरुणः	=	सर्वश्रेष्ठ, ग्रहण करने योग्य प्रभु।
अधिपतिः	=	स्वामी।
पृदाकू	=	पीठ पीछे बुराई करने वाले छद्मवेषी मनुष्य, बुरा शब्द करने वाले जीव।
रक्षिता	=	रक्षक।
अन्नम्	=	अनाज, औषधि।
इषवः	=	बाण, साधन।

शेष पूर्ववत्—

शब्दार्थ—

हे ईश्वर आप सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वव्यापक हैं इसीलिए आपका नाम वरुण है। आप पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। हमारी पीठ पीछे हमें हानि पहुंचाने वाले व्यक्तियों से तथा कुशब्द करने वाले जीवों से हमारी रक्षा करते हैं। अन्न, औषधि, आप के रक्षा साधन हैं, क्योंकि

इन्हीं के द्वारा हमें तेज और नीरोगता प्राप्त होती है।

मन्त्र—

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता ऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व० ३।२७।४

शब्दार्थ—

उदीची	=	उत्तर।
दिग्	=	दिशा का।
सोमः	=	चन्द्र, शान्ति और आनन्द देने वाला प्रभु।
अधिपतिः	=	स्वामी।
स्वजो	=	स्वयमेव उत्पन्न (रोग, दुर्भाव)
रक्षिता	=	रक्षक।
अशनिः	=	विद्युत् शक्ति
इषवः	=	बाण, साधन, शेष पूर्ववत्

भावार्थ—

हे ज्ञान और आनन्दरूप भगवन् आप, इस रूप में उत्तर दिशा के स्वामी हैं अर्थात् हमारे बाईं ओर व्यापक हैं। आप स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं और हमारी स्वयमेव उत्पन्न होने वाली बुराइयों से अपनी प्रेरणा शक्ति से, और स्वयमेव उत्पन्न होनें वाले रोगों से अपने विद्युत् रूप से, रक्षा करते हो। बिजली के प्रयोग से कई रोगों का उपचार होता है और शरीर में भी एक प्रकार की विद्युत् शक्ति ही हमारे

रुधिर को ठीक-ठीक-ठीक संचालित कर हमें स्वस्थ रखती है। अतः इस मन्त्र में ऐसी प्रार्थना की गई है। शेष पूर्ववत्—

मन्त्र—

ओ३म् ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ अथर्व० ३।२७।५

शब्दार्थ—

ध्रुवा	=	स्थिर, विशाल, नीचे का पृथ्वीतल।
दिग्	=	दिशा।
विष्णुः	=	सर्वव्यापक।
अधिपतिः	=	स्वामी।
कल्माष-	=	हरित रंग, अन्नरूप।
ग्रीवो	=	गरदन वाले।
रक्षिता	=	रक्षा करने वाले
वीरुध	=	वृक्ष लता आदि
इषवः	=	बाण, साधन।

शेष पूर्ववत्—

भावार्थ—

हे सर्वव्यापक प्रभु आप नीचे की स्थिर दिशा पृथिवीतल के स्वामी हैं। वहां रहकर आप हमारी हरे भरे वृक्षों तथा अन्नों को उपजा कर उनके द्वारा हमारे जीवन की रक्षा करते हैं। अतः

शेष पूर्ववत्—

मन्त्र—

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥
अथर्व० ३।२७।६

शब्दार्थ—

ऊर्ध्वा	=	ऊपर की।
दिग्	=	दिशा।
बृहस्पतिः	=	सब से बड़ा, सब लोगों का और सब विद्याओं का स्वामी।
अधिपतिः	=	स्वामी, अध्यक्ष।
श्वित्रः	=	श्वेत रोग (त्वचा के रोग) शुद्धरूप प्रभु।
रक्षिता	=	रक्षा।
वर्षम्	=	वर्षा।
इषवः	=	बाण, साधन।

शेष पूर्ववत्—

भावार्थ—

हे प्रभु आप बृहस्पति, सब से महान्, वाणी अथवा लोक लोकान्तरों के स्वामी हैं। आप ऊपर की दिशा के अधिराज हैं। वहां रह कर अपने शुद्ध रूप से हमें वीर्य, आत्मज्ञान आदि शक्तियां देकर श्वेतता देने वाले त्वचा रोगों से बचाते हैं। वर्षा तथा आपका स्नेह जल हमारी रक्षा का साधन है। शेष पूर्ववत्।

उपस्थान मन्त्र १

इस मन्त्र से ईश्वर की समीपता अनुभव की जाती है। इसलिए इसका नाम उपस्थान मन्त्र है।

मन्त्र—

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ यजु० ३५।१४

शब्दार्थ—

उत्	=	उन्नति के पथ में।
वयं	=	हम सब।
तमसः	=	अन्धकार से।
परि	=	परे।
स्वः	=	सुख प्राप्ति के हेतु।
पश्यन्तः	=	देखते हुए।
उत्तरं देवं	=	अधिकतर ज्योति वाले देव आत्मा को।
देवत्रा	=	दिव्य गुणों की रक्षक आत्म तथा प्राण शक्ति को।
सूर्य्यम्	=	संसार की आत्मा और श्रेष्ठतम प्रकाश के स्रोत को।
अगन्म	=	प्राप्त होते हैं।
ज्योतिः	=	प्रकाश।
उत्तमम्	=	सर्वश्रेष्ठ।

भावार्थ—

इस मन्त्र में भगवान् की उपासना की है। उपासना की विधि,

क्रम भी बताया है। हम सब अज्ञान अन्धकार से परे होकर सर्व-प्रथम सांसारिक सुख के साधन, उनके हेतुओं को आत्मा में जानें तब ज्ञान की दूसरी अवस्था में दिव्य गुणों के रक्षक आत्मा को जानें तत्-पश्चात् इसी क्रम से संसार में व्यापक सर्वश्रेष्ठ ज्योति स्वरूप भगवान् को प्राप्त करें, क्योंकि वही हमारा वास्तविक उद्देश्य है।

इस मन्त्र में ज्ञान की तीन अवस्थाएं (उच्च) प्रकृति, उच्चतर (आत्मा), उत्तम (परमात्मा) वर्णित हैं।

नोट—यह मन्त्र विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है। क्योंकि इसमें शिक्षा प्राप्ति का क्रम तथा उद्देश्य बतलाया है अर्थात् पहले हमें प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, फिर आत्मा का और अन्त में परमात्मा का तभी हमारी शिक्षा पूर्ण होगी। और यह तीनों प्रकार की शिक्षा चलेगी भी साथ-साथ।

उपस्थान मन्त्र २

ओ३म् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्॥ यजु० ३३।३१

शब्दार्थ—

उत्	=	ऊपर।
उ	=	निश्चय से।
यं	=	जिसको।
जातवेदसं	—	सर्वव्यापक प्रभु को।
जात	=	उत्पन्न मात्र को वेदस् जानने वाला। अथवा उनमें व्यापक (रहने वाला)।
देवं	=	दिव्य शक्ति वाले को।

वहन्ति	=	धारण करती हैं।
केतवः	=	किरणें, वेद, पदार्थ आदि पताकाएं।
दृशे	=	देखने के लिए।
विश्वाय	=	सब के लिए।
सूर्य्यम्	=	सूर्य को, प्रकाश रूप प्रभु को।

भावार्थ—

ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं संसार के पदार्थ तथा वेदादि ज्ञान हमें उस सत्तात्मक प्रभु का उसी प्रकार ज्ञान करवाते हैं, जिस प्रकार सूर्य्य की किरणें (प्रकाश) हमें सूर्य का ज्ञान करवाती हैं। भगवान् की रचना में ही हम उसके रूप का अनुभव कर सकते हैं।

उपस्थान मन्त्र ३

मन्त्र—

ओम् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष७ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ यजु० ७।४२

शब्दार्थ—

चित्रं	=	विचित्र।
देवानाम्	=	देवों की, सूर्य्य, चन्द्र, तारा, जल, अग्नि, वायु, बिजली आदि प्रकाशमान पदार्थों की।
उदगात्	=	उदय होकर उपस्थित है।
अनीकं	=	सेना, समूह।

चक्षुः	=	प्रकाशक प्रदर्शक।
मित्रस्य	=	सब की रक्षा करने वाले भगवान् की।
वरुणस्य	=	वरुण की।
अग्नेः	=	अग्नि की, प्रकाश रूप की।
आ प्रा	=	प्रकृष्ट रूप से फैली हुई।
द्यावा	=	द्युलोक में, ग्रह, नक्षत्रादि में।
पृथिवी	=	पृथिवी में।
अन्तरिक्षꣳ	=	आकाश, शून्य स्थान में।
सूर्य	=	सूर्य, व्यापक प्रभु।
आत्मा	=	सब के अन्दर रहने वाला।
जगतः	=	चर, चलने वाले, चेतन।
तस्थुषः	=	जड़, पर्वत, वनस्पति।
च	=	और।
स्वाहा	=	सु+आह शुभ, सत्य, सुन्दर, कथन।

भावार्थ--

वह देखिए देवताओं की विचित्र सेना सामने आ गई है। कौन सी सेना ? सूर्य, चन्द्र, तारा, जल, अग्नि, वायु, बिजली आदि प्रकाश देने वाली (भौतिक शक्तियां) यह शक्तियां ही उस प्रभु की प्रकाशक हैं जिसको वरुण, मित्र, अग्नि के नाम से पुकारते हैं। इन शक्तियों ने द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रखा है अर्थात् इन सब में फैली हुई हैं। यह सूर्य और सब में समाया हुआ परमात्मा, इस जड़ और चेतन जगत् की आत्मा है अर्थात् इसमें बसा हुआ है। जैसे सूर्य के होने से ही जड़, चेतन, प्राणी जीवित रह सकते हैं वैसे परमात्मा की सत्ता भी सब को जीवित रखने के लिए अनिवार्य है।

हमारा यह कथन सत्य हो, शुभ हो, मंगलकारी हो। यह विचार विश्व-कल्याण की वृद्धि में सहायक हो सकता है।

उपस्थान मन्त्र ४

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत७ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु० ३६।२४

शब्दार्थ—

तत्	=	वह।
चक्षुः	=	सर्वद्रष्टा, सब को देखने वाला।
देवहितम्	=	देवताओं का हितकारी।
पुरस्तात्	=	सामने, पहले से।
शुक्रम्	=	तेज, सूर्य्यादि पदार्थों को चमकाने वाली शक्ति, बल, वीर्य।
उत्	=	ऊपर।
चरत्	=	उठता हुआ।
पश्येम	=	देखें।
शरदः	=	वर्ष।
शतम्	=	सौ।
जीवेम	=	जिएं। जीते रहें।
शरदः	=	वर्ष।
शतम्	=	सौ।
शृणुयाम	=	सुनते रहें।

शरदः	=	वर्ष।
शतम्	=	सौ।
अदीनाः	=	दीनता रहित, सामर्थ्य वाले।
स्याम	=	हों।
शरदः	=	वर्ष।
शतम्	=	सौ।
भूयः	=	अधिक।
च	=	और।
शरदः	=	वर्ष।
शतात्	=	सौ से अधिक।

भावार्थ—

उपासना करते-करते साधक को भगवान् की शक्ति का अनुभव होने लगा, अपने शरीर में भी उसने शक्ति का अनुभव किया तब वह कहता है। देखो, वह सब को देखने वाला, देवताओं, विद्वानों का हितकारी, प्रेमी, सामने, ऊपर उठता हुआ शुक्र, तेज, प्रभु का बल हमें प्राप्त हो गया है। अतः इसी के आधार से हम सब सैकड़ों वर्षों तक देखते, जीते, सुनते, बोलते हुए शक्तिशाली होकर रहें, यदि हो सके तो सौ से भी अधिक हमारी यह शक्तियां बनी रहें। ऐसी हमारी प्रार्थना अथवा भावना है। ब्रह्मचर्य और भगवान् की भक्ति ही दीर्घ आयु तथा पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है यह भाव है।

मन्त्र १८

गायत्री मन्त्र।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० ३६।३

शब्दार्थ—

भूः	=	सर्वाधार। सत्
भुवः	=	दुःखों से छुड़ाने वाला। चित्
स्वः	=	सुखरूप; आनन्द स्वरूप
तत्	=	वह, उस।
सवितुः	=	उत्पन्न करने वाले का।
वरेण्यम्	=	ग्रहण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ।
भर्गः	=	शुद्ध रूप।
देवस्य	=	दिव्य गुणों वाले प्रभु का।
धीमहि	=	हम ध्यान करते हैं।
धियः	=	बुद्धियों को।
यः	=	जो।
नः	=	हमारी।
प्रचोदयात्	=	प्रेरणा करे।

हे प्रभु आप सर्वाधार, दुःखनाशक और सुखस्वरूप हैं। हम उस उत्पन्न करने वाले, ग्रहण करने योग्य, शुद्धरूप देव का ध्यान करते हैं। जो हमारी बुद्धियों को (सन्मार्ग की ओर) प्रेरित करे।

इस मन्त्र में प्रार्थना, उपासना तथा स्तुति तीनों का वर्णन है, आप सर्वाधार, दुःखनाशक और सुखरूप हैं, यह स्तुति है। हम उस उत्पन्न करने वाले, ग्रहण करने योग्य, शुद्धरूप देव का ध्यान करते हैं, यह उपासना है। जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे, यह प्रार्थना है। इस मन्त्र में बुद्धि के लिए प्रार्थना है। इन दो कारणों से इस मन्त्र का विशेष महत्त्व है और प्रायः इसका तीन बार पाठ भी किया है।

मन्त्र १६

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।

नमस्कार मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । यजु० १६।४१

शब्दार्थ—

नमः	=	नमस्कार ।
शम्भवाय	=	कल्याण के स्रोत के लिए ।
च	=	और ।
मयोभवाय	=	सुख के स्रोत के लिए ।
च	=	और ।
नमः	=	नमस्कार हो ।
शङ्कराय	=	कल्याण करने वाले के लिए ।
च	=	और ।
मयस्कराय	=	सुख प्रदान करने वाले के लिए ।
च	=	और ।
नमः	=	नमस्कार हो ।
शिवाय	=	कल्यांण रूप के लिए ।
च	=	और ।
शिवतराय	=	अत्यन्त मंगलरूप के लिए ।

इस मन्त्र में आनन्द रूप भगवान् को नमस्कार अर्थात् अपने आपको पूर्णरूप से भगवान् के साथ जोड़ दिया गया है । अपने आपको

उस मंगलरूप के अर्पित कर दिया गया है। इसीलिए इस मन्त्र का नाम समर्पण मन्त्र भी है।

भावार्थ—

हे सुख देने वाले, कल्याण के कारण, सुख तथा कल्याण प्रदान करने वाले आपके मंगल तथा उत्कृष्ट कल्याण रूप को मेरा बार-बार नमस्कार हो। कल्याण-कामना शम् से प्रारम्भ होकर शम् से ही यह सन्ध्या समाप्त हुई है। क्योंकि सर्वप्रथम मंत्र शम्+नः शन्नो देवी से प्रारम्भ होता है और यह अन्तिम मन्त्र शिवतराय से समाप्त होता है। अतः सन्ध्या में अथ से इति तक कल्याण की कामना है।



द्वितीय पाठ

प्रार्थना मन्त्र १

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न: आसुव:। यजु० ३०।३

शब्दार्थ—

ओ३म्	=	सब के रक्षक।
विश्वानि	=	सब प्रकार की।
देव	=	दिव्य गुणों वाले प्रभु।
सवितर्	=	उत्पन्न करने वाले।
दुरितानि	=	बुरे भाव।
परासुव	=	दूर करो।
यद्	=	जो।
भद्रं	=	कल्याणकारी भाव।
तत्	=	वह।
न:	=	हमें।
आसुव	=	प्राप्त कराएं।

भावार्थ—

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता दिव्यगुणों वाले देव आप हमारे सब बुरे भावों का नाश करिए, इन को हमारे से दूर रखिए। और जो कल्याणकारी भाव हैं, सुन्दर विचार हैं उनको हमें प्राप्त करवाइए।

मन्त्र २

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० १३।४

शब्दार्थ —

हिरण्यगर्भः	=	समस्त प्रकाशरूप वस्तुएं सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि को धारण करने वाले।
समवर्तत	=	विद्यमान था।
अग्रे	=	सब से पहले।
भूतस्य	=	उत्पन्न मात्र का।
जातः	=	जो विद्यमान है।
पतिः	=	पालक, स्वामी।
एक	=	अकेला, केवल वही।
आसीत्	=	था।
स	=	वह, उसने।
दाधार	=	धारण किया।
पृथिवी	=	पृथिवी लोक को।
द्याम्	=	द्युलोक को।
उत	=	और।
इमां	=	इसको।
कस्मै	=	किसके लिए, सुखरूप के लिए।
देवाय	=	दिव्यगुणयुक्त प्रभु के लिए।
हविषा	=	हवि (यज्ञ, परोपकार) के द्वारा।
विधेम	=	(भक्ति) करें।

भावार्थ—

वह प्रभु प्रकाश रूप है। समस्त चमकने वाले पदार्थ (सृष्टि से पूर्व) सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि उसी के अन्दर विद्यमान थे। जितने भी प्राणी विश्व में उत्पन्न हुए हैं उन सब का वही एक स्वामी था। तत्पश्चात् जब सृष्टि उत्पन्न हो गई तो उसी ने पृथिवी लोक और द्युलोक को धारण किया। हम किस प्रभु की किस देवता की भक्ति करें? इसका उत्तर इसी में है—हम उसी सुखरूप प्रभु की यज्ञार्थ कर्मों के द्वारा विशेष रूप से भक्ति करें।

प्रार्थना मन्त्र ३

ओ३म् यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं देवाः। यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ यजु० २५।१३

शब्दार्थ—

यः	=	जो।
आत्मदा	=	आत्मिक।
बलदा	=	बल का देने वाला है।
यस्य	=	जिसकी।
विश्व	=	संसार।
उपासते	=	उपासना करता है।
प्रशिषं	=	ज्ञान को, आज्ञा को।
यस्य	=	जिसकी।
देवाः	=	देवता, विद्वान् लोग।
यस्य	=	जिसकी।

छाया	=	शरण, आश्रय ।
अमृतं	=	पूर्ण सुख, अमरता ।
यस्य	=	जिस का (दूर रहना)
मृत्युः	=	मरण, नाश, दुःख ।
कस्मै	=	उस सुखरूप ।
देवाय	=	देव के लिए ।
हविषा	=	यज्ञ के द्वारा ।
विधेम	=	(उपासना) करें ।

भावार्थ—

जो आत्मिक शक्ति का देने वाला है । जिसकी आज्ञा तथा ज्ञान की सारे विद्वान् लोग उपासना करते हैं आज्ञा मानते हैं । जिसका आश्रय अमृत पूर्ण सुख का साधन है । जिससे विमुख रहना ही मृत्यु है, महान् दुःख है । उस सुखरूप प्रभु की हम भक्ति पूर्वक पूजा करें ।

प्रार्थना मन्त्र ४

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजु० २३।३

शब्दार्थ—

यः	=	जो ।
प्राणतो	=	श्वास लेते हुए ।
निमिषतो	=	पलक मारते हुए ।

महित्वा	=	महत्ता के कारण, महान् होने के कारण।
एकः	=	अकेला।
इत्	=	ही।
राजा	=	शासक, प्रशासक।
जगतो	=	जगत् का।
बभूव	=	हुआ, है।
यः	=	जो।
ईशे	=	शासन करता है।
अस्य	=	इस (जगत्) के।
द्विपदः	=	दो पैर वाले।
चतुष्पदः	=	चार पैर वाले।
'कस्मै देवाय हविषा विधेम'	=	इसका अर्थ पूर्व मन्त्र में दे दिया गया है।

भावार्थ—

जो इस संसार का राजा है। प्राण-धारण करने वाले और पलक मारने वाले जीवों का जो स्वामी है। जो इस संसार में रहने वाले दो पैर वाले मनुष्यों का तथा चार पैर वाले पशुओं का शासक है। उसी सुख रूप प्रभु की हम यज्ञ द्वारा भक्ति, पूजा करें।

प्रार्थना मन्त्र ५

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ यजु० ३२।६

शब्दार्थ —

येन	=	जिसके द्वारा, जिसने ।
द्यौः	=	द्युलोक, तेजोमय लोकों का स्थान ।
उग्रा	=	तेज वाली ।
पृथिवी	=	पृथिवी ।
च	=	और ।
दृढा	=	पक्की, कठोर ।
येन	=	जिसके द्वारा, जिसने ।
स्वः	=	स्वर्ग, सुख ।
स्तभितं	=	धारण किया हुआ है ।
येन	=	जिसके द्वारा, जिसने ।
नाक	=	मोक्ष का आनन्द ।
यो	=	जो ।
अन्तरिक्षे	=	आकाश मण्डल में ।
रजसो	=	लोक लोकान्तर ।
विमानः	=	गतिशील करता है ।
कस्मै	=	किसके लिए, सुखरूप के लिए ।
देवाय	=	दिव्य गुणधारी ईश्वर के लिए ।
हविषा	=	यज्ञमय कर्मों के द्वारा ।
विधेम	=	भक्ति करें ।

भावार्थ —

जिस प्रभु ने इस तीव्र स्वभाव वाले द्युलोक को, कठोर पृथिवी को, स्वर्गलोक को (सुख के स्थान को) और मोक्ष के आनन्द को धारण कर रक्खा है। जो अन्तरिक्ष में घूमने वाले लोक लोकान्तरों को गति-

शील बनाता है। उसी सुख रूप प्रभु की हम सब उत्तम कर्मों के द्वारा भक्ति करें।

प्रार्थना मन्त्र ६

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ऋ० १०।१२१।१०

शब्दार्थ—

प्रजापते	=	हे सृष्टि के स्वामी।
न	=	नहीं।
त्वत्	=	तेरे से।
न	=	नहीं।
अन्य	=	दूसरा।
विश्वा	=	सारे।
जातानि	=	उत्पन्न पदार्थ।
परि	=	ऊपर।
ता	=	यह सब।
बभूव	=	हुआ।
यत्	=	जो कुछ भी।
कामाः	=	हम चाहते हैं। (चाहते हुए)।
ते	=	तेरे लिए।
जुहुम	=	यज्ञ करते हैं।
तत्	=	वह।
नः	=	हम सब को।
अस्तु	=	प्राप्त हो।

वयं	=	हम सब।
स्याम	=	हों।
पतयो	=	स्वामी।
रयीणाम्	=	धनों के।

भावार्थ—

हे प्रजाओं के स्वामी आपके अतिरिक्त इस सारी सृष्टि का स्वामी कोई नहीं है। हम जो-जो कामना करते हुए आपके लिए यज्ञ करते हैं वह सब कुछ हमें आप से प्राप्त हो। हम सब उत्तम-उत्तम धनों के स्वामी बनें।

प्रार्थना मन्त्र ७

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ यजु० ३२।१०

शब्दार्थ—

स:	=	वह।
नो	=	हमारा।
बन्धुः	=	सम्बन्धी सहायक।
जनिता	=	उत्पन्न करने वाला।
स	=	वह।
विधाता	=	रचने, धारण करने वाला।
धामानि	=	लोक लोकान्तरों को।
वेद	=	जानता है।
विश्वा	=	सारे।

भुवनानि	=	भुवनों को।
यत्र	=	जहां, जिसमें।
देवाः	=	विद्वान् लोग।
अमृतम्	=	परमानन्द, मोक्ष सुख को।
आनशानाः	=	भोगते हुए
तृतीये	=	तीसरे लोक में, परमात्मा के समीप
धामन्	=	स्थान में, लोक में।
अध्यैरयन्त	=	स्वतन्त्रता से विचरते हैं।

भावार्थ—

वह प्रभु हमारा बन्धु और उत्पन्न करने वाला है। उसी ने सब लोक लोकान्तरों को धारण किया हुआ है। वह समस्त भुवनों को जानता है। विद्वान् लोग उसी की समीपता को पाकर मोक्ष का आनन्द भोगते हैं। उसी की कृपा से महात्मा लोग तीसरे लोक में अर्थात् जागृत, स्वप्न इन दो अवस्थाओं को पार करके तीसरी समाधि की अवस्था को प्राप्त करके स्वतन्त्रतापूर्वक सर्वत्र घूमते हैं।

प्रार्थना मन्त्र ८

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥ यजु० ४०।१६

शब्दार्थ—

अग्ने	=	हे प्रकाशरूप प्रभो !
नय	=	ले जा।
सुपथा	=	सुमार्ग से।

राये	=	धन ऐश्वर्य के लिए
अस्मान्	=	हम को ।
विश्वानि	=	सब ।
देव	=	दिव्यगुण युक्त प्रभु ।
वयुनानि	=	विविध, ज्ञान विज्ञान ।
विद्वान्	=	जानते हैं ।
युयोधि	=	दूर कर ।
अस्मत्	=	हमारे से ।
जुहुराणम्	=	कुटिलता को ।
एनो	=	इसको ।
भूयिष्ठां	=	अत्यन्त प्रेम पूर्वक ।
ते	=	तेरे लिए ।
नम	=	नमस्कार ।
उक्ति	=	कथन को ।
विधेम	=	करते हैं ।

भावार्थ—

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो, समस्त उत्तम-उत्तम धनों की प्राप्ति के लिए आप हमें सुमार्ग पर ले जाएं। आप दिव्य गुण युक्त हैं और सब प्रकार के ज्ञान तथा विज्ञान के स्वामी हैं। अतः हमारी कुटिलता को दूर कीजिए। हम आपको परम प्रेम पूर्वक बार-बार नमस्कार करते हैं।



अथ स्वस्तिवाचनम्

मन्त्र—

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥१॥

शब्दार्थ—

अग्निम्	=	ज्ञानस्वरूप प्रभु की ।
ईळे	=	मैं स्तुति करता हूँ (करती हूँ) ।
पुरोहितम्	=	उत्पत्ति से पहले, आगे ले जाने वाले ।
यज्ञस्य	=	हवन का (प्रत्येक सर्वहितकारी काम के) ।
देवम्	=	देने वाले, चमकने वाले ।
ऋत्विजम्	=	ऋतु के अनुसार प्रेरणा देने वाले की ।
होतारम्	=	देने और लेने वाले के ।
रत्नधातमम्	=	पृथिवी स्वर्ण आदि रत्नों के धारण करने वाले को ।

भावार्थ—

प्रभु का भक्त भक्तिभाव से पूर्ण होकर कहता है कि मैं उस दिव्य गुणों वाले दानी परोपकारी सर्वत्र चमकने वाले, यज्ञ में शुभ कामों में लगाने वाले, सदा हितकारी बनाकर आगे ले जाने वाले अग्नि रूप नेतारूप प्रभु की स्तुति करता हूँ ताकि मैं ये गुण धारण कर सकूं। संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं को प्राप्त कर दानी बन सकूं।

मन्त्र—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥

शब्दार्थ—

स	=	वह प्रभु।
नः	=	हमारे लिए।
सूनवे	=	पुत्र के लिए।
पितेव	=	पिता के समान।
अग्ने	=	हे अग्ने।
सचस्व	=	सुखकारी हो।
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए।
सूपायनो	=	सुगमता से प्राप्त होने योग्य।
भव	=	हो।

भावार्थ—

हे पिता हम तेरे पास तेरे पुत्र बनकर सुख पाने के लिए तेरे पास सुगमता से आने के अधिकारी बनें इसी में हमारा कल्याण है। पुत्र वही पिता को सुगमता से पा सकता है जो पिता की आज्ञा मान उसके बताए या चलाए नियमों के अनुसार अपने को जीवन बनाता है इससे विपरीत नहीं। तुम प्रभु को बुलाते रहो, प्रार्थना करते रहो, परन्तु मनमानी करते रहो तो वह हमारी इच्छा कभी भी पूरी नहीं करेगा। आज्ञाकारी सदाचारी पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन सकता है।

मन्त्र—

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥२

शब्दार्थ—

अश्विना	=	अध्यापक और उपदेशक।
अनर्वणः	=	ऐश्वर्य रहित का।

स्वस्ति मिमीताम्	=	सुख रचें।
अश्विनौ	=	अध्यापक और उपदेशक।
भगः	=	ऐश्वर्य देने वाला।
नः स्वस्ति	=	हमारा कल्याण करे।
देवी अदिति =	=	प्रकाशित अखण्ड विद्या।
नः स्वस्ति	=	हमारा कल्याण करे।
पूषा	=	पुष्टिकारक दुग्धादि पदार्थ।
नः स्वस्ति	=	हमारा कल्याण करें।
असुरः नः	=	मेघ हमारा।
स्वस्ति दधातु	=	कल्याण करें।
द्यावापृथिवी	=	द्योलोक पृथिवी लोक।
सुचेतुना	=	उत्तम विज्ञान से।
स्वस्ति	=	सुखदायी हों।

भावार्थ—

इस मन्त्र में यह शिक्षा दी गई है कि अध्यापक तथा उपदेशक लोगों को ऐसी शिक्षा और उपदेश देवें जिस से प्रत्येक मनुष्य अखण्ड सत्य विद्या और विज्ञान को प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली बनें दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों को प्राप्त करें, मेघों से वर्षा और पृथिवी द्योलोक से विज्ञान को प्राप्त करके उनका सदुपयोग करें।

मन्त्र—

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

शब्दार्थ—

स्वस्तये	=	सुख के लिए।
वायुम्	=	वायु विद्या को।

सोमम् = ऐश्वर्य को।
उप ब्रवामहे = उपदेश करें।
यः भुवनस्य पतिः = जो लोक का स्वामी है।
स्वस्तये = उपद्रव दूर करने के लिए।
सर्वगणम् = सब जनों को।
बृहस्पतिम् = वाणी के पति को।
आदित्यासः = ४८ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने वाले
स्वस्ति = सुखकारी विद्वान्।
भवन्तु = हों।
नः = हमारे लिए।

भावार्थ—

हम सब सुख ऐश्वर्य पाने के लिए वायु और सोम की विद्या को जानें और प्रचार करें। संसार के तथा वाणी के स्वामी की उपासना करें। प्रभु पर विश्वास रखते हुए उसकी वेदवाणी का मन, वचन, कर्म से अभ्यास करें। इसीलिए आदित्य ब्रह्मचारी हमारी सहायता करें। श्रेष्ठ विद्वानों के बिना सद्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। सद्ज्ञान बिना श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकते।

मन्त्र—

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

शब्दार्थ—

विश्वे देवा = सारे विद्वान्।
नो = हमें।
अद्या = आज।
स्वस्तये = कल्याण के लिए।

अवन्तु	=	रक्षा करें।
स्वस्तये वैश्वानरः	=	सुख के लिए सब में व्यापक अग्नि।
वसः अग्निः	=	वास देने वाला, ज्ञानरूप प्रभु।
ऋभवः देवा	=	विद्वान् बुद्धिमान् जन विद्या सुख के लिए।
रुद्रः स्वस्ति	=	दुष्टों का नाश करने वाले प्रभु।
नः अंहसः पातु	=	हमें अपराधों से बचाएं।

भावार्थ—

विद्वानों की कृपा से हम उत्तम उपदेश को ग्रहण करें तथा प्रभु की दण्ड विधायक शक्ति का ध्यान रखते हुए कभी अपराध न करें।

मन्त्र—

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

शब्दार्थ—

हे अदिते	=	अखण्ड विद्याधारी।
रेवति	=	बहुत धन से युक्त आप।
पथ्ये	=	मार्ग में, कर्मों में जैसे
मित्रावरुणौ	=	प्राण और उदान।
नः स्वस्ति	=	हम लोगों का कल्याण करते हैं।
इन्द्रः च अस्ति	=	वायु सुख देता है वैसे।
अग्निः च अस्ति	=	बिजली सुख देती है वैसे।
स्वस्ति नः कृधि	=	हम लोगों को सुख दीजिए।

भावार्थ—

हे विद्वान् आप हमें ऐसे ही सुखी बनाइए जैसे कर्म करते हुए प्राण उदान हमारी रक्षा करते हैं वायु और बिजली हमारी सहायता करती हैं। जिन विद्वानों की विद्या अखण्ड होती है उनके वचन ही जीवन को सुखी बनाते हैं।

मन्त्र—

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥

शब्दार्थ—

सूर्याचन्द्रमसौ इव	=	हम लोग सूर्य और चन्द्रमा के समान।
स्वस्ति पन्थाम्	=	कल्याण मार्ग पर।
अनुचरेम	=	चलें, आचरण करें।
पुनः	=	बार बार।
ददता	=	दानी।
अघ्नता	=	अहिंसक।
जानता	=	ज्ञानी लोगों के।
संगमेमहि	=	साथ रहें।

भावार्थ—

ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो यदि कल्याण चाहते हो तो जैसे चन्द्रमा सूर्य के पीछे पीछे चलता हुआ उसके प्रकाश को प्राप्त करता है उसी प्रकार आप भी दानी, परोपकारी और ज्ञानी मनुष्यों का अनुकरण करते हुए जीवन को त्यागी, परोपकारी और ज्ञानी बनाओ यही कल्याण का सच्चा मार्ग है।

मन्त्र—

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

शब्दार्थ—

ये देवानाम्	=	जो विद्वानों में विद्वान् ।
यज्ञियानाम् यज्ञियाः	=	यज्ञ करने वालों में योग्य यज्ञ करने वाले ।
मनोः	=	विचारशील के ।
यजत्राः	=	संग करने ।
अमृताः	=	जीवनमुक्त ।
ऋतज्ञाः	=	सत्य को जानने वाले ।
ते अद्य	=	वे आज ।
नः	=	हमें ।
रासन्ताम्	=	देवें ।
उरुगायम्	=	बहुतों से गाए हुए ज्ञान को ।
यूयं	=	आप सब ।
स्वस्तिभिः	=	कल्याणकारी विद्यादि दानों से ।
सदा नः पात	=	सदा हमारी रक्षा करो ।

भावार्थ—

हे विद्वानो जो अत्यन्त विद्वान्, शिल्पी, सदाचारी और जीवनमुक्त हैं ब्रह्मज्ञानी हैं हमारी विद्यादि दानों से उन्नति में सहायक होते हैं उनकी हम सदा सेवा करें ।

मन्त्र—

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥९॥

शब्दार्थ—

येभ्यो	—	जिनके लिए।
द्यौः अद्रिबर्हाः	—	द्यु लोक और मेघ से आच्छादित।
अदितिः माता	—	अखण्ड पृथिवी।
मधुमत् पीयूषं	=	मिठास युक्त अमृत।
पयः पिन्वते	=	दूध अथवा अन्नयुक्त उत्तम जल को बहाती है देती है।
तान्	=	उन।
उक्थशुष्मान्	=	उत्तम प्रशस्त वेदज्ञान से बली।
वृषभरान्	=	यज्ञ द्वारा वर्षा लाने वाले।
आदित्यान्	=	आदित्य ब्रह्मचारियों को।
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए।
अनुमदा	=	उस पृथिवी को प्रसन्न करें।
स्वप्नसः	=	सुकृत कार्य करने वाले।

भावार्थ—

जो विद्वान् अग्नि, जल, वायु, पृथिवी, आकाश की विद्या को जानकर उसके द्वारा संसार के लिए सुख के साधन जुटाते हैं हम लोग उनका सत्संग करें तथा उनके उपदेशों से लाभ उठाएं। इसी में हमारा कल्याण है।

मन्त्र—

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०

शब्दार्थ—

नृचक्षसः	=	विद्वान् लोग जो।
अनिमिषन्तः	=	दिन रात काम करने वाले, एक क्षण भी व्यर्थ न खोने वाले अप्रमादी।
अर्हणा	=	अति योग्य।
देवासः	=	दिव्य गुण सम्पन्न ब्रह्मवेत्ता।
बृहत्	=	अत्यधिक।
अमृतत्वम्	=	मोक्ष को।
आनशुः	=	प्राप्त करते हैं और।
ज्योतीरथाः	=	ज्योतिष्मान् रथ पर सवार अर्थात् प्रकाश में, ज्ञान में रमण करने वाले।
अहिमाया	=	अप्रतिहत बुद्धि विस्तृत बुद्धि वाले।
अनागसः	=	निष्पाप जन।
दिवः	=	प्रकाशयुक्त।
वर्ष्माणं	=	प्रभु के परम पद स्थान को।
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए।
वसते	=	धारण करते हैं।

भावार्थ—

परिश्रमी, विद्वान्, योग्य और उज्ज्वल जीवन वाले, विद्वान् और निष्पाप जीवन से उपकार ही करते रहते हैं वे अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर अन्त में मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

मन्त्र—

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिहृवृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥११॥

शब्दार्थ—

ये सुवृधः	=	जो अपनी और दूसरों की खुशहाली चाहते और करते हैं।
सम्राजः	=	अपने तेज से प्रकाशित।
यज्ञम् आयपुः	=	यज्ञमय जीवन को पाते हैं।
अपरिह्वृता	=	कुटिलता से रहित।
दिवि क्षयम्	=	प्रकाश लोक में निवास।
दधिरे	=	करते हैं।
तान्	=	उनको।
मह आदित्यान्	=	महान् अखण्ड ब्रह्मचारी पुरुषों को।
अदितिं	=	अखण्ड सत्यता को।
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए।
नमसा	=	नमस्कार से।
सुवृक्तिभिः	=	अच्छी सुन्दर प्रार्थनाओं से।
आविवास	=	परिचर्या करें।

भावार्थ—

वही लोग सत्कार के योग्य होते हैं जो कुटिल न बनकर यज्ञमय परोपकारी जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे कर्मठ विद्वानों की संसार में पूजा होनी चाहिए। अपने कल्याण के लिए हम सदा उनका सत्संग करें।

मन्त्र—

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥१२

शब्दार्थ—

विश्वे देवासः	=	समस्त दिव्य गुण युक्त विद्वानो।
को वः स्तोमं राधति	=	आप लोगों के उपदेष्टव्य वेदज्ञान स्तुति का कौन उपदेश करता है।
यम् जुजोषथ	—	जिसकी आप सप्रेम सेवा करते हो।
मनुषः	—	हे मननशील पुरुषो
तुविजाताः	—	विद्वान् जनो।
यतिष्ठन	—	आप जितने भी हो।
को वः अध्वरम्	—	आप ने हिंसा रहित यज्ञ को
अरंकरत्		सुशोभित किया है।
यः	—	जो।
अंहः	—	पाप युत कर्म से।
अति	—	लांघ कर।
नः	—	हमें।
स्वस्तये	—	कल्याण के लिए।
पर्षदति	—	पार कर दे।

भावार्थ—

हे देवो! मननशील विद्वानो प्रभु कृपा से आप अपने ज्ञान से हमारे यज्ञों को अलंकृत कर अपने उपदेशों से पापनिवारक यज्ञों से हमें पापों से हटाकर कल्याण पथ को प्राप्त कराइये।

मन्त्र—

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३

शब्दार्थ—

येभ्यः	—	जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए।

समिद्धाग्निः	—	अग्निहोत्री।
मनुः	—	मननशील विद्वान्।
मनसा	—	मन से।
सप्त होतृभिः	—	सात होताओं द्वारा।
प्रथमाम्	—	मुख्य।
होत्राम्	—	यज्ञ को।
आयेजे	—	सम्मान करता है।
ते आदित्याः	—	वे आदित्य ब्रह्मचारी।
अभयं शर्म	—	भय रहित सुख को।
यच्छत	—	देवें और।
नः स्वस्तये	—	हमारे कल्याण के लिए।
सुगा	—	सुगम।
सुपथा	—	सुमार्ग से।
कर्त्त	—	करें।

भावार्थ—

पूर्वकाल से सात होताओं, पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि सहित जिन्होंने यज्ञ किया है और करते आ रहे हैं वही अखण्डव्रती हमारे कल्याण के लिए यज्ञ कराते रहें।

मन्त्र—

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यंद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

शब्दार्थ—

ये	=	जो।
प्रचेतसो	—	ज्ञानी।
मन्तवः	—	मननशील हैं वे।

विश्वस्य	—	सारे।
भुवनस्य	—	संसार के।
स्थातुः	—	स्थावर।
जगतः	—	जंगम के।
ईशिरे	—	पालक शासक होते हैं।
देवासः	—	हे विद्वानो।
ते	—	वे तुम।
नः	—	हमें।
कृतात्	—	किए हुए।
अकृतात्	—	न किए हुए।
एनसः	—	पाप से।
परि	—	हटाकर।
अद्य	—	इसी जीवन में।
स्वस्तये	—	कल्याण के लिए।
पिपृता	—	रक्षा करो।

भावार्थ—

जो विद्वान् प्रकृति के नियमों को जानता है, जो सच्चा तत्त्वदर्शी है वह संसार के जड़ चेतन पदार्थों से लाभ उठा सकता है। शारीरिक और मानसिक पापों से बचा सकता है।

मन्त्र—

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५

शब्दार्थ—

भरेषु	—	संकटों व संग्रामों में।
सुहवम्	—	सुगमता से बुलाए जाने योग्य।

अंहोमुचम्	—	पापों से छुड़ाने वाले।
सुकृतम्	—	विचित्र कारीगरी वाले।
दैव्यम्	—	दिव्य शक्ति सम्पन्न।
जनम्	—	समस्त संसार के उत्पादक।
अग्निम्	—	ज्ञान स्वरूप को।
मित्रं	—	सब से स्नेह करने वाले।
वरुणम्	—	वरणे योग्य।
भगम्	—	भजनीय।
इन्द्रम्	—	सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को।
सातये हवामहे	—	अन्नादि के लिए बुलाते हैं।
द्यावापृथिवी	—	द्यौ लोक और पृथिवी लोक।
मरुतः स्वस्तये	—	अन्तरिक्ष पृथिवी हमारे कल्याण के लिए हो।

भावार्थ—

संकटों में संग्रामों में उसी को बुलाते हैं वही हमें पापों से छुड़ाता है, सब उत्तम वस्तुओं का रचयिता है, सब से स्नेह करता है, अन्नदान भी वही करता है। ग्रहण करने योग्य भी वही है, भजने योग्य भी वही है। अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु हमारा कल्याण करें।

मन्त्र—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६

शब्दार्थ—

सुत्रामाणं	=	उत्तम रीति से रक्षा करने वाली
पृथिवीम्		विस्तृत पृथिवी को।
द्याम्	=	सूर्य समान प्रकाशयुक्त।

अनेहसं	=	पापों से रहित।
सुशर्माणम्	=	उत्तम सुख युक्त।
अदितिं	=	अखण्ड।
सुप्रणीतिं	=	बहुत रोचक।
स्वरित्राम्	=	सुन्दर अरे वाली।
अनागसम्	=	निर्दोष।
अस्रवन्तीम्	=	न चूने वाली छेद रहित।
दैवीम्	=	दिव्य वाक्य अर्थात् जल, अग्नि, भाप, विद्युत आदि से चलने वाली नौका पर या दिव्य गुणों से सम्पन्न वेदमाता रूपी
नावम्	=	नाव पर।
स्वस्तये	=	सुख के लिए।
आरुहेम	=	वेदवाणी के द्वारा सब प्रकार के सुख प्राप्त करें।

भावार्थ—

जिस नौका में सुख आदि के सब सामान हों, जो छेदवाली न हो, जिस में अनेक प्रकार का प्रकाश हो, विद्वान् हों. उसी बड़ी नौका में सवार होकर समुद्र पार देश देशान्तरों में जाकर अपने देश को लक्ष्मी-वान् करें अथवा विद्वानों के संग से सच्चे धन का उपार्जन करें।

यहां पर दैवी नाव के दो अर्थ हैं, वैज्ञानिक जहाज आदि और दिव्य गुणों वाली वेदवाणी।

मन्त्र —

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥

शब्दार्थ—

विश्वे यजत्रा	=	सब विद्वानो ।
ऊतये	=	रक्षा के लिए ।
अधिवोचत	=	उपदेश दो इसी से ।
अभिह्रु तः	=	हिंसा और कुटिलता युक्त ।
दुरेवाया	=	दुर्गति से अपनी ।
त्रायध्वं	=	रक्षा करो ।
नो	=	हमारी ।
सत्यया	=	सच्ची ।
वो	=	तुम ।
देवहूत्या	=	वेदवाणी द्वारा ।
हुवेम	=	बुलाते हैं ।
शृण्वतो	=	सुनते हुए ।
देवा	=	विद्वान् ।
अवसे	=	रक्षा के लिए ।
स्वस्तये	=	सुख के लिए ।

भावार्थ—

विद्वानों के सत्योपदेश से ही हम सारे दुःख संकटों को पार हो सकते हैं ।

मन्त्र

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८

शब्दार्थ—

देवाः	=	हे विद्वानो !

अमीवाम्	=	संकटों को ।
अप	=	हटाओ ।
विश्वाम्	=	सब प्रकार के ।
अनाहुतिम्	=	अयज्ञमय जीवन को ।
अप	=	हटाओ ।
अराति	=	अदानशीलता ।
दुर्विदत्राम्	=	कुमति को ।
अघायतः	=	हिंसा व पाप करने की इच्छा वाले को ।
द्वेषः	=	द्वेष को ।
अस्मत्	=	हम से ।
आरे	=	परे ।
युयोतन	=	हटाओ ।
नः	=	हमें ।
स्वस्तये	=	कल्याण के लिए ।
उरु	=	बहुत सा ।
शर्म	=	सुख ।
यच्छत	=	दो ।

भावार्थ—

विद्वानों के उपदेश पर आचरण करने से दो काम होंगे एक तो हम यज्ञमय जीवन और कुमति से बच सकेंगे, हिंसक और पाप के भाव दूर हो जाएंगे और दूसरे यज्ञमय जीवन बनाकर हम सदाचारी बनकर सुखी रहेंगे ।

मन्त्र—

अरिष्टः सः मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १६

शब्दार्थ—

आदित्यासो	=	अखण्ड ब्रह्मचारियो।
यम्	=	जिसको।
सुनीतिभिः	=	सुन्दर नीतियों से।
विश्वानि	=	सारे।
दुरिता	=	बुराइयां कुमार्ग दुर्व्यसनों से।
परि प्रति नयथा	=	छुड़ाकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं।
स्वस्तये	=	सुख के लिए।
सः मर्त्तः	=	वह मनुष्य।
अरिष्टः	=	पीड़ा रहित।
विश्व	=	सारे।
एधते	=	बढ़ता है और।
धर्मणः	=	धर्म से।
परि	=	लगा हुआ।
प्रजाभिः	=	सन्तानों के साथ।
प्रजायते	=	प्रकट होता है।

भावार्थ—

सूर्य के समान वेदज्ञान का प्रकाश करने हारे ज्ञानियों के मुख से उपदेश सुनकर ही मनुष्य सब प्रकार की पीड़ाओं और पापों से मुक्त हो सकता है।

मन्त्र—

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०

शब्दार्थ—

मरुतः देवासः	=	वायुविद् बलवान् वीर जन।

वाजसातौ	=	ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि के लाभ में।
यं	=	जिस।
रथम्	=	रथ को रमणीय यान को।
अवथ	=	रक्षा करते हो।
शूरसाता	=	वीरों के उपयुक्त संग्राम में।
हिते धने	=	हितकर धन को प्राप्त करने के लिए।
इन्द्रसानसिम्	=	उत्तम सुशोभित।
प्रातर्यावाणम्	=	प्रात:काल से ही गमन योग्य।
अरिष्यन्तम्	=	हानि रहित रथ पर।
स्वस्तये	=	सुख के लिए।
आरुहेम	=	चढ़ें।]

भावार्थ—

हितकर धनादि प्राप्ति के लिए हमें जहां शूरवीर बनना चाहिए वहीं प्रभु रूपी रमणीय रथ की भी शरण लेनी चाहिए। क्योंकि उसकी सहायता के बिना वास्तविक विजय नहीं हो सकती।

मन्त्र—

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

शब्दार्थ—

मरुत:	=	हे गतिशील विद्वानो।
न:	=	हमारे लिए।
पथ्यासु	=	मार्ग के योग्य देशों में।
धन्वसु	=	मरुस्थलों में।
स्वस्ति	=	कल्याण हो।

अप्सु स्वस्ति	=	जलों में कल्याण हो।
स्वर्वति	=	सैन्यादि वलों से युक्त।
वृजने	=	संग्राम में।
स्वस्ति	=	कल्याण हो।
नः	=	हमारे।
पुत्रकृथेषु	=	पुत्रोत्पत्ति के।
योनिषु	=	कारण गृहिणियों में।
स्वस्ति	=	कल्याण करो।
राये	=	धनादि के लिए।
स्वस्ति दधातन	=	कल्याण को धारण करो।

भावार्थ—

विद्वानों के सत्संग से, उपदेश से हमें सर्वत्र शुभ की प्राप्ति हो।

मन्त्र—

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥

शब्दार्थ—

स्वस्ति	=	शुभ हो।
इत् हि प्रपथे	=	उत्तम मार्ग पर चलने वाले का।
श्रेष्ठा रेक्ण स्वति	=	अति सुन्दर ऐश्वर्य और वीर्य।
या वामम् अभि एति	=	जो सुन्दर प्रशंसनीय व्यक्ति को प्राप्त होती है। ऐसी सहचारिणी गृहिणी हो।
सा नः	=	वह हमें।
सः	=	वह
अमा	=	घर में

अरणे	=	सुखादि साधनों से रहित स्थानों में।
नि पातु	=	हमारी रक्षा करे हमारा पालन पोषण करे।
सु आवेशा	=	सुखप्रद निवास स्थानों में।
देवगोपा	=	उत्तम पुरुषों द्वारा रक्षित।
भवतु	=	हो।

भावार्थ—

घर को सुखी बनाने वाली सुगृहिणी ही होती है। पति-पत्नी की अनुकूलता से ही गृहस्थ जीवन सुखी हो सकता है।

मन्त्र—

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आ प्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥

शब्दार्थ—

सविता देवः	=	सर्वजगद् उत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त, सब सुखों के देने और सर्वज्ञान प्रकाशक परमात्मा है।
त्वा वः	=	तुम सब को।
वायवः	=	स्पर्श गुण वाले प्राण अन्तःकरण इन्द्रियां आदि हैं उनको।
श्रेष्ठतमाय कर्मणे	=	सर्वव्यापक यज्ञादि श्रेष्ठतम कामों के लिए।
प्रार्पयतु	=	भली प्रकार लगाए।

इषे	=	अन्न आदि उत्तम पदार्थ विज्ञान की इच्छा और।
ऊर्जे	=	पराक्रम और उत्तम रस के लिए।
भागं	=	सेवा करने योग्य वन और ज्ञान के भरे हुए, उक्त [गुण वाले और।
त्वा	=	आपका आश्रय करते हैं हे मित्रो।
आप्यायध्वम्	=	उन्नति को प्राप्त हों, हे प्रभो! हमारे।
इन्द्राय	=	ऐश्वर्य के लिए।
प्रजावती	=	सन्तानवाली।
अनमीवा	=	रोग रहित।
अयक्ष्मा	=	राजयक्ष्मा से रहित।
अघ्न्या	=	न मारने योग्य उनको।
प्रार्पयतु	=	प्राप्त कराओ नियत कीजिए।
अघशंसः	=	पापी को।
स्तेन	=	चोर।
मा ईशत	=	मत बढ़ें आप इस।
यजमानस्य	=	यजमान के धर्मात्मा परोपकारी के।
पशून् पाहि	=	पशुओं की रक्षा करो।
अस्मिन् गोपतौ	=	पृथिवी आदि उत्तम पदार्थों के रक्षक सज्जन मनुष्यों के समीप।
बह्वीः	=	बहुत से उक्त पदार्थ।
ध्रुवा स्यात	=	निश्चल सुख के हेतु हों।

भावार्थ—

विद्वानों को सर्वप्रथम ऋग्वेद को पढ़ना चाहिए जिससे उन्हें सब पदार्थों के गुणों का ज्ञान हो जाए। तत्पश्चात् उन पदार्थों का ठीक-ठीक प्रयोग करके उत्तम अन्न और बल की प्राप्ति करें तथा पापियों का नाश करें। हम सदा श्रेष्ठ कर्म करें, उचित साधनों से ऐश्वर्य को पाएं, हमारी सन्तान तभी रोग रहित होगी जब हमारा अर्जित धन शुद्ध साधनों से कमाया जायेगा, चोर डाकुओं से भी पीड़ित नहीं होंगे। इन्द्रिय संयमी बनकर दृढ़ रहेंगे। यजमान बनेंगे, निष्काम कर्म करेंगे तभी हमारे सभी पशुओं की हमारे कार्य साधनों की रक्षा होगी। यजुर्वेद के इस मन्त्र में मनुष्य की सर्वोन्मुखी उन्नति के साधनों का वर्णन है। भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि मुझे अन्न, धन, शक्ति, नीरोग सन्तान दे, जिससे मैं श्रेष्ठ कर्म करता हुआ पापों तथा पापियों से पृथक् रह सकूं।

मन्त्र—

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥२४॥

शब्दार्थ—

नः	=	हमारी।
विश्वतः	=	सब ओर।
भद्राः	=	कल्याण करने वाले।
अदब्धासः	=	जो विनाश को न प्राप्त हुए।
अपरीतासः	=	जो औरों से व्याप्त नहीं किए गए अर्थात् सर्वोत्तम कार्य।
उद्भिदः	=	दुःखनाशक।

क्रतवः	=	यज्ञ कार्य या बुद्धिबल।
आ यन्तु	=	अच्छी प्रकार प्राप्त हों।
यथा	=	जैसे।
नः	=	हम लोगों की।
सदम्	=	सभा को कि जहां प्राप्त।
अप्रायुवः	=	जिनकी अवस्था नष्ट नहीं होती वे।
देवाः	=	विद्वान् लोग।
इत्	=	वही।
दिवे दिवे	=	प्रतिदिन।
वृधे	=	वृद्धि के लिए।
रक्षितारः	=	रक्षक।
असन्	=	हों।

भावार्थ—

सभी को विद्वानों के संग से बुद्धिमान् बनना चाहिए। धर्म का सदा ही आचरण करना चाहिए, सब को सब की रक्षा में तत्पर रहना चाहिए।

मन्त्र—

देवानां भद्राः सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳪरातिरभि नो निवर्तताम्। देवानाᳪ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥

शब्दार्थ—

देवानाम्	=	विद्वानों की।
भद्राः	=	कल्याणी।
सुमतिः	=	उत्तम बुद्धि हम लोगों को और।

ऋजूयताम्	=	कठिन विषयों को सरल बनाएं।
देवानाम्	=	देने वालों को।
रातिः	=	दान की भावना।
नः	=	हमें।
अभिनिवर्तताम्	=	चारों ओर से सिद्ध करे, सब गुणों से पूर्ण करे।
वयम्	=	हम।
देवानां	=	विद्वानों की।
सख्यम्	=	मित्रता को।
उपसेदिम	=	शीघ्र पावें।
देवाः	=	विद्वान् लोग।
नः	=	हम को।
जीवसे	=	जीने के लिए।
आयुः	=	हमारी पूर्ण आयु को।
प्रतिरन्तु	=	यापन करवावें।

भावार्थ—

विद्वानों से उत्तम बुद्धि पाके मनुष्य ब्रह्मचर्य से आयु को बढ़ावें सदैव धार्मिकों से मित्रता रक्खें।

मन्त्र—

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

शब्दार्थ—

वयम्	=	हम।
अवसे	=	रक्षा के लिए।
जगतः	=	चेतन और।

तस्थुषः	=	जड़ जगत् के।
पतिम्	=	रक्षक को।
धियञ्जिन्वम्	=	बुद्धि को शुद्ध व पुष्ट करने वाले।
तम्	=	उस अखण्ड।
ईशानम्	=	सब को वश में रखने वाले, सब के स्वामी परमात्मा की।
हूमहे	=	हम स्तुति करते हैं वह।
यथा	=	जैसे।
नः	=	हमारे।
वेदसाम्	=	धनों की।
वृधे	=	वृद्धि के लिए।
पूषा	=	पुष्टिकर्ता तथा।
रक्षिता	=	रक्षक।
स्वस्तये	=	सुख के लिए
पायुः	=	सब का रक्षक।
अदब्ध	=	अहिंसक।
असत्	=	होवे। वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह भी तुम्हें रक्षादि के साधन प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करे।

भावार्थ—

सब विद्वान् ऐसा उपदेश करें कि सभी लोग उस ईश्वर की उपासना करते हुए अपनी उन्नति में लगे रहें।

मन्त्र—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७

शब्दार्थ—

वृद्धश्रवाः	=	बहुत सुनने वाले ।
इन्द्रः	=	परमैश्वर्यशाली ईश्वर ।
नः	=	हमारे ।
स्वस्ति	=	उत्तम सुख जो,
विश्ववेदाः	=	वेद धन वाला ।
पूषा	=	पुष्टिकारक ।
नः	=	हम लोगों के लिए ।
स्वस्ति	=	सुख को ।
तार्क्ष्यः	=	घोड़े के समान ।
अरिष्टनेमिः	=	सुख देता हुआ ।
नः	=	हमारे ।
स्वस्ति	=	उत्तम सुख तथा जो ।
बृहस्पतिः	=	महानता का स्वामी, पालन करने वाला ।
नः	=	हमारे लिए ।
स्वस्ति	=	उत्तम गुण ।
दधातु	=	धारण करे ।

तुम्हारे ऊपर भी सुख की वर्षा करे ।

भावार्थ—

प्रत्येक को अपने समान ही दूसरों के सुख की कामना भी करनी चाहिए । जैसे हम दुःखी होना नहीं चाहते दूसरों को भी दुःखी न करें ।

मन्त्र—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

शब्दार्थ—

यजत्राः	=	यज्ञ करने वाले ।
देवाः	=	विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम ।
कर्णेभिः	=	कानों से ।
भद्रं	=	सत्य को ।
शृणुयाम	=	सुनें ।
अक्षभिः	=	आंखों से ।
भद्रम्	=	कल्याण को ।
पश्येम	=	देखें ।
स्थिरैः	=	दृढ़ ।
अंगैः	=	अवयवों से ।
तुष्टुवांसः	=	स्तुति करते हुए ।
तनुभिः	=	शरीरों से ।
यत्	=	जो ।
देवहितम्	=	विद्वानों के लिए सुखकारी ।
आयुः	=	अवस्था है उसको ।
वि अशेमहि	=	अच्छे प्रकार प्राप्त हो ।

भावार्थ—

मनुष्य को सदा विद्वानों की अच्छी बातें ही सुननी चाहिए । सच्ची ही देखनी चाहिए । दृढ़ अंगों से ईश्वर की उपासना करनी चाहिए । तभी हम दीर्घ और स्वस्थ जीवन का आनन्द भोग सकते हैं ।

मन्त्र—

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥

शब्दार्थ—

अग्ने	=	हे प्रकाशरूप परमात्मन् ।
बर्हिषि	=	हमारे ज्ञान यज्ञरूप ध्यान में ।
आयाहि	=	आइए प्राप्त हूजिए ।
गृणानः	=	स्तुति के योग्य ।
होता	=	दाता हैं ।
वीतये	=	प्रकाश करने के लिए और ।
हव्यदातये	=	यज्ञ का फल देने के लिए ।
निसत्सि	=	विराजो ।

भावार्थ—

प्रभो ! हम आप से प्रार्थना करते हैं, आप सदा हमारे हृदय में ही विराजमान रहो । हम सदा आप को अपने हृदय में अनुभव करें ।

मन्त्र—

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

शब्दार्थ—

अग्ने	=	हे ज्ञान स्वरूप प्रभो ! आप ।
विश्वेषां यज्ञानां	=	सब यज्ञों के परोपकारी कार्यों के ।
त्वम्	=	आप
होता	=	ग्रहण करने वाले हैं ।
देवेभिः	=	विद्वानों से ।

मानुषे जने	=	मनुष्य समूह में।
हितः	=	धारण किए जाते हैं।

भावार्थ—

हे प्रभो, आप यज्ञस्वरूप हो, सब यज्ञ आपके ही लिए किए जाते हैं, आप की प्रेरणा से होते हैं। सब विद्वान् आप की ही स्तुति का गान करते हैं।

मन्त्र—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥२१॥

शब्दार्थ—

ये	=	जो।
त्रिषप्ताः	=	तीन-सात २१।
विश्वा	=	सब।
रूपाणि	=	रूपों को।
बिभ्रतः	=	धारण करते हुए।
परियन्ति	=	सर्वत्र छाए हुए हैं।
तेषां	=	उनके।
बला:	=	बलों को
वाचस्पतिः	=	वेदवाणी का पति परमात्मा।
अद्य	=	आज वर्तमान काल में :
मे	=	मेरे।
तन्वः	=	शरीर में व आत्मा में।
दधातु	=	धारण करे।

भावार्थ —

इस मन्त्र में त्रिषप्ता शब्द से २१ पदार्थों को जगत् को धारण करने का कारण कहा है।

(पांच) महाभूत, (पांच) प्राण, (पांच) ज्ञानेन्द्रियां, (पांच) कर्मेन्द्रियां और एक अन्त:करण=२१ प्रकृति की तीन अवस्थाएं (गुण) सत्त्व, रज, तम और (सात) पदार्थ—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, पांच तन्मात्रा (विषय) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, (अहंकार) अथवा सप्तग्रह, सप्त ऋषि, सप्त मरुद्गण। अथवा १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक और इक्कीसवां आदित्य।

इस प्रकार ईश्वर इन विभिन्न २१ रूपों से सारे जगत् में व्याप्त होकर इसे धारण कर रहा है। वही ईश्वर मेरे मन आत्मा और शरीर में बसा रहे।

इति स्वस्तिवाचनम्॥

ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।



शान्तिकरणम्

मन्त्र—

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

शब्दार्थ—

पदार्थः	—	हे जगदीश्वर !
वाजसातौ	=	संग्राम में।
सुविताय	=	ऐश्वर्य के लिए।
नः	=	हमें।
अवोभिः	=	रक्षा आदि के साथ।
इन्द्राग्नी	=	बिजली और साधारण अग्नि।
शम्	=	सुख करने वाले।
शम्	=	मंगलकारी हों।
रातहव्या	=	जिन्होंने ग्रहण करने योग्य वस्तु दी है ऐसे।
इन्द्रावरुणा	=	विद्युत् और जल।
नः	=	हमारे लिए।
इन्द्रासोमा	—	बिजली और ओषधियां।
शम्	—	सुख कारक हों।
शंयोः	—	सुख के लिए और।
इन्द्रापूषणा	—	बिजली और वायु।
नः	—	हमारे लिए।
शम्	=	सुखकारी हो।

भवताम्	=	हम ऐसा प्रयत्न करें।

भावार्थ—

हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से विद्वानों के संग रहकर अपने पुरुषार्थ से आपके रचे हुए बिजली आदि का प्रयोग करें। आप हमें इसमें सफलता दो।

मन्त्र—

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥२॥

शब्दार्थ—

नः	=	हमारे।
भगः	=	ऐश्वर्य।
शम्	=	सुखदायी।
नो	=	हमारी।
शंसः	=	शिक्षा व प्रशंसा।
शम्	=	सुखदायी।
च	=	और।
पुरन्धिः	=	जिसमें बहुत पदार्थ रखे जाते हैं। वह आकाश।
शम्	=	सुख देने वाला।
अस्तु	=	हो।
नः	=	हमारे लिए।
रायः	=	धन।
शम्	=	सुखकारी।
उ	=	ही।
सन्तु	=	हों।

नः	=	हमारे लिए।
सत्यस्य	=	यथार्थ धर्म व परमेश्वर को।
सुयमस्य	=	सुन्दर नियम से प्राप्त होने योग्य व्यवहार की।
शंसः	=	प्रशंसा।
शम्	=	सुखदायी और।
पुरुजातः	=	बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध।
अर्यमा	=	न्यायकारी।
नः	=	हमारे लिए।
शम्	=	आनन्ददायक।
अस्तु	=	होवे ऐसा हम प्रयत्न करें।

भावार्थ—

हे मनुष्य तुम ऐश्वर्य, पुण्यकीर्ति, अवकाश, धन, धर्म, योग्य और न्यायाधीश सुख करने वाले बनने का प्रयत्न करो।

मन्त्र—

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं नः उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥

शब्दार्थ—

धाता	=	धारण करने वाला।
शम्	=	सुखरूप।
अस्तु	=	होवे।
स्वधाभिः	=	अन्नादिकों के साथ।
उरूची	=	अनेक पदार्थों वाली पृथिवी।
नः	=	हमारे लिए।

शम् भवतु	=	सुखकारी हो।
बृहती रोदसी	=	महान् प्रकाश और अन्तरिक्ष।
नः	=	हमारे लिए।
शम्	=	सुखद हो।
अद्रिः	=	मेघ।
नः शम्	=	हमारे लिए सुख देवे।
देवानाम्	=	विद्वानों के।
सुहवानि	=	प्रशंसा के बुलावे आवाहन सुखकारी
सन्तु	=	हों।

भावार्थ—

हे मनुष्यो तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे तुम्हें पुष्टिकारकों से उपकार और सुख की प्राप्ति हो।

मन्त्र—

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥

शब्दार्थ—

हे ईश्वर या विद्वान् आप की कृपा से

ज्योतिरनीकः	=	ज्योति ही जिसकी सेना है वह।
अग्निः	=	यह अग्नि।
नः शम् अस्तु	=	हमारा कल्याण करे, हमें सुख दे।
अश्विना	=	व्यापक पदार्थ।
शम्	=	सुख रूप हो।
मित्रावरुणा	=	प्राण और उदान।
नः शम्	=	हमें सुख देवे।
नः	=	हम।

सुकृताम्	=	शुभ काम करने वालों के ।
सुकृतानि	=	शुभ कार्य ।
शम् सन्तु	=	कल्याणकारी हों ।
इषिरः	=	शीघ्रगामी ।
वातः	=	वायु ।
नः शम्	=	हमें सुख दे ।
अभिवातु	=	सब ओर बहे ।

भावार्थ—

हम सब अग्नि और वायु आदि पदार्थों के गुणों को जानकर ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

मन्त्र—

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

शब्दार्थ—

पूर्वहूतौ	=	प्रथम प्रशंसित ।
द्यावापृथिवी	=	बिजली और भूमि ।
नः	=	हमें ।
शम्	=	सुख दे ।
दृशये	=	देखने के लिए ।
अन्तरिक्षम्	=	भूमि और सूर्य के बीच का स्थान
नः	=	हमारे लिए ।
शम्	=	सुखरूप ।
अस्तु	=	हो और ।
ओषधीः	=	ओषधि तथा ।

वनिनः	=	वन में जो वृक्ष विद्यमान हैं वे।
नः शम्	=	हमारे लिए सुखकारी।
भवन्तु	=	हों।
रजसः	=	लोकों में सब का।
पतिः	=	स्वामी।
जिष्णुः	=	जयशील।
नः	=	हमारे लिए सुखरूप।
अस्तु	=	हो।

भावार्थ—

जो कार्य के आरम्भ में बुलावे, सूर्य, भूमि और मध्यलोक शान्तिदायक हों। औषधियां अन्नादि और वन के पदार्थ हमें शान्तिदायक हों, विद्वान् इन सभी वस्तुओं का गुण जान ठीक प्रयोग करके उनसे सुख लाभ कर सकते हैं।

मन्त्र—

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

शब्दार्थ—

हे जगदीश्वर वा विद्वान् आप हमारी सहाय से परीक्षा से—

इह	=	यहां।
वसुभिः	=	पृथिव्यादि के साथ।
देवः	=	दिव्य गुण कर्म, स्वभाव युक्त।
इन्द्रः	=	बिजली व सूर्य।
नः	=	हमारे लिए।
शम्	=	सुखरूप हो और।

आदित्येभिः	=	सम्वत्सर के महीनों के साथ।
सुशंसः	=	प्रशंसित।
वरुणः	=	जल समुदाय।
नः	=	हमारे लिए।
शम् अस्तु	=	सुखरूप हो।
रुद्रः	=	प्रभु।
रुद्रेभिः	=	जीव का प्राणों के साथ।
जलाषः	=	दुःख निवारक जीव व परमात्मा।
नः शम्	=	हमारे लिए सुखदायी हो।
ग्नाभिः	=	वाणियों के द्वारा।
त्वष्टा	=	परीक्षक विद्वान्।
नः शम्	=	हमारे सुख के लिए।
शृणोतु	=	सुने।

भावार्थ—

जो पृथिवी आदित्य और वायु की विद्या को जानकर उसके द्वारा ईश्वर जीव और प्राणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। परीक्षा करके विद्वान् और उद्योगी बनते हैं वे सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं।

मन्त्र—

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

शब्दार्थ—

हे जगदीश्वर वा विद्वान् आपकी शिक्षा से—

सोमः नः शम् भवतु	=	चन्द्रमा हमारे लिए सुखकारी हो।

ब्रह्म नः शम्	=	वेद ज्ञान सुखस्वरूप हो।
ग्रावाणः शम्	=	मेघ हमारे लिए सुखदायी।
भवतु	=	हो।
यज्ञाः नः शम् उ	=	अग्निहोत्र से लेकर शिल्पविद्या तक यज्ञ रूप सुख देने वाले हों।
स्वरूणां	=	यज्ञशाला के स्तम्भ शब्दों के।
मितयः	=	सोमाएं।
नः शम् भवन्तु	=	हमारे लिए कल्याणकारी हों।
प्रस्वः नः शम्	=	जो औषधि अन्न उत्पन्न होते हैं वह भी कल्याणदायक हों।
वेदिः शम् अस्तु	=	यज्ञ की वेदी कुण्ड आदि भी सुखकारी हों।

भावार्थ—

जो मनुष्य विद्या, औषधि, धन और यज्ञादि से जगत् का सुख के साथ उपकार करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं।

मन्त्र—

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

शब्दार्थ—

हे परमेश्वर—

उरुचक्षा सूर्य नः	=	सर्व प्रकाशक सूर्य हमारे लिए।
शम् उदेतु	=	सुखकारक उदय हो।
चतस्रः दिशः नः	=	चारों दिशाएं हमारे लिए।
शम् भवन्तु	=	कल्याणकारी हों।

ध्रुवयः पर्वताः नः=	स्थिर पर्वत हमारा।
शम् भवन्तु —	कल्याण करें।
सिन्धवः नः शम् =	नदी सागर हमारे लिए सुखरूप हों और।
आपः शम् उ सन्तु=	जल व प्राण सुखरूप हों।

भावार्थ—

जो जगदीश्वर से बनाए हुए सूर्यादिकों से उपकार ले सकते हैं वे इस जगत् में श्री, राज्य और कीर्ति वाले होते हैं।

मन्त्र—

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

शब्दार्थ—

हे विद्वान् अध्यापको तुम जैसे—

अदितिः =	विदुषी माता वैसे।
व्रतेभिः =	अच्छे नियमों से।
नः शम् भवतु =	हम लोगों के लिए सुखदायी बने।
स्वर्काः =	सुन्दर मन्त्र विचार हैं जिनके वे।
मरुतः =	प्राणों के समान प्रियजन अच्छे कामों के साथ सुखकारी हों।
विष्णु नः शम् =	व्यापक जगदीश्वर हम लोगों के लिए सुखकारी हों।
पूषा नः उ शम्=	पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार हमारे लिए सुखरूप हों।

भवित्रं नः शम्=		होनहार काम हमें सुख दें।
वायुः नः शम् उ=		पवन हमारे लिए कल्याणकारी
अस्तु	—	हो।

भावार्थ—

माता आदि विदुषियों की कन्या और विद्वान् पिता आदि के पुत्र अच्छे प्रकार शिक्षा देने के योग्य हैं जिससे वे भूमि से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों की विद्याओं को पाके धार्मिक बनकर सब को आनन्द दें।

मन्त्र—

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

शब्दार्थ—

हे विद्वानो आपकी शिक्षा से हम—

त्रायमाणः	=	रक्षक, उत्पादक ईश्वर।
देवः	=	जो सब सुखों का देने वाला।
सविता	=	प्रकाशमान देवता है वह।
नः शम् भवतु	=	हमारा कल्याण करें।
विभातीः उषसः	=	चमकीली प्रभातवेला।
न शम् भवन्तु	=	हमारे लिए सुखदायी हों।
पर्जन्यः प्रजाभ्यः	=	मेघ हमारी प्रजाओं के लिए।
नः शम् भवतु	=	हम सब के लिए सुखकारी हो।
क्षेत्रस्य पतिः	=	राजा, स्वामी तथा ईश्वर।
शम्भुः नः	=	सुख की भावना वाला हमारे लिए।
शम् अस्तु	=	सुखकारी हो।

भावार्थ—

विद्वान् लोगों को वेदादि सत्य विद्याओं के उपदेश से पदार्थों के गुण, कर्म स्वभाव बताएं जिससे वे लोग उनका ठीक-ठीक उपयोग करके सुखी होवें।

मन्त्र—

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥

शब्दार्थ—

हमारे शुभाचरण से—

देवाः	=	विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले।
विश्वदेवाः	=	सभी विद्वान्।
नः शम् भवन्तु	=	हमारा कल्याण करें।
सरस्वती	=	विद्या सुशिक्षा युक्त वाणी।
धीभिः सह नः शम्	=	उत्तम बुद्धियों के साथ हमें सुखदायक।
अस्तु	=	हो।
अभिषाचः	=	अन्तरात्मा से सम्बन्ध रखने वाले।
नः शम्	=	हमारा कल्याण करें।
रातिषाचः	=	दान देने वाले से।
शम् उ	=	कल्याण कारक हो।

भावार्थ—

मनुष्यों को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे उन्हें, विद्या, सुबुद्धि, सुवाणी देने वाले विद्वान् योगीजन प्राप्त हों तथा दिव्य पदार्थ श्रेष्ठ, गुण भी मिलें।

मन्त्र—

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।१२।।

शब्दार्थ—

हे ईश्वर या विद्वान् !

हवेषु	=	हवन आदि कामों में ।
सत्यस्य पतयः	=	सत्य व्यवहार करने वाले ।
नः शम् भवन्तु	=	हमारा कल्याण करें ।
अर्वन्तः	=	घोड़े ।
नः शम्	=	हमें सुख देवें ।
गावः नः उ	=	दूध देती गउएं हमारी ।
शम् सन्तु	=	कल्याणकारी हों ।
सुकृताः	=	शुभकारी ।
सुहस्ताः	=	हाथों से अच्छे काम करने वाले । कारीगर ।
ऋभवः	=	बुद्धिमान् जन ।
नः शम्	=	हमारा कल्याण करते रहें ।

भावार्थ—

मनुष्य सुशील बनें, जिससे वे सब सज्जनों, पितृजनों तथा पशुओं को भी प्रसन्न रख सकें ।

मन्त्र—

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ।।१३।।

शब्दार्थ—

हे विद्वानो तुम ऐसी शिक्षा दो जिससे—

नः	=	हम लोगों को।
अजः	=	जो कभी नहीं जन्म लेता।
एकपात्	=	जिसके एक पैर में सारा जग विद्यमान है।
देवः शम् अस्तु	=	वह देव सुखरूप हो।
बुध्न्यः	=	अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध।
अहि नः शम्	=	बादल हम लोगों के लिए सुखरूप हो।
समुद्रः	=	सागर।
नः शम्	=	हमारा कल्याण करते रहें।
अपां पेरुः	=	जलों को पार करने वाला।
नपात्	=	जिसके पैर नहीं वह नौकाएं।
नः शम् अस्तु	=	हमारा कल्याण करे।
देवगोपाः	=	सब का रक्षक, दिव्य गुण वालों की रक्षा करने वाला।
पृश्निः	=	अन्तरिक्ष, अवकाश।
शम् भवतु	=	सुखकारी हो।

भावार्थ—

दिव्य गुणों की नौका पर बैठकर ही मनुष्य सब प्रकार के दुःखों से पार होता है। इसलिए हम ईश्वर तथा विद्वानों से ऐसी शिक्षा की कामना करते हैं जो हमारे अन्दर, दया, क्षमा, उदारता आदि दिव्य गुणों को उत्पन्न करें। और सब के रक्षक बनें।

मन्त्र—

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

शब्दार्थ—

इन्द्रः	=	सर्वशक्तिमान् ईश्वर।
विश्वस्य	=	सारे जग का प्रकाशक है स्वयं भी
राजति	=	प्रकाशित हो रहा है। उसकी कृपा से।
नः द्विपदे	=	हमारे दो पैर वाले पुत्रादि और।
चतुष्पदे	=	चार पैरों वाले गो आदि पशुओं के लिए।
शम् अस्तु	=	सुख हो।

भावार्थ—

परमेश्वर ही सब प्रकार के सुख देने वाला है। इसलिए हम सदा उसी की उपासना करें।

मन्त्र

शं नो वातः पवता७ शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥

शब्दार्थ—

वातः	=	वायु।
नः शम् पवताम्	=	हमारे सुख के लिए चलें।
सूर्यः नः शम् भवतु	=	सूर्य हमारे सुख के लिए चमकें।
कनिक्रदत्	=	गरजता हुआ।
देवः	=	उत्तम गुण वाला विद्युत्रूप अग्नि।
नः शम्	=	हमारा कल्याण करे और।
पर्जन्यः अभिवर्षतु	=	मेघ चारों ओर से बरसे।

भावार्थ—

मनुष्य को ऐसे काम करने चाहिएं जिससे वायु, सूर्य, मेघ सब

के लिए सुखरूप हों।

मन्त्र—

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शं नः इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं नः इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय
शं योः ॥१६॥

शब्दार्थ—

हे प्रभो विद्वानो !

अवोभिः	=	रक्षा के साधनों से।
शंयोः	=	सुख की।
सुविताय	=	प्रेरणा के लिए।
नः अहानि शम्	=	हमारे दिन कल्याणप्रद।
भवन्तु	=	हों।
रात्रीः शम्	=	रातें हमारे लिए कल्याण को।
प्रति धीयताम्	=	धारण करें।
इन्द्राग्नी नः	=	बिजली और अग्नि हमारे लिए।
शम् भवताम्	=	सुखकारी हो।
रातहव्या	=	जिनसे ग्राह्य सुख मिला है वे।
इन्द्रावरुणा	=	विद्युत् और जल।
नः शम्	=	हमारे लिए कल्याणकारी हों।
वाजसातौ	=	अन्नों के सेवन हेतु संग्राम में।
इन्द्रापूषणा	=	विद्युत् और पृथिवी।
नः शम्	=	हमारा कल्याण करे।
इन्द्रासोमा	=	बिजली और ओषधियां।
शम्	=	कल्याणकारी हों ऐसी हमें अनुकूल शिक्षा दें।

भावार्थ—

यदि हम ईश्वर की आज्ञा का पालन करें, विद्वानों की शिक्षा पर चलें तो हमें ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ सुखकारी हो सकते हैं।

मन्त्र—

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥

शब्दार्थ—

अभिष्टये	=	इष्ट सुख की सिद्धि के लिए।
पीतये	=	पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए।
देवीः	=	दिव्य गुणों वाले।
आपः	=	जल, प्रभु।
नः शम् भवन्तु	=	हमारा कल्याण करें।
शंयोः	=	सुख की वर्षा।
अभिस्रवन्तु	=	चारों ओर से हो।

भावार्थ—

जो मनुष्य यज्ञ सन्ध्या करते हैं और शुद्ध जल का सेवन करते हैं उनको शारीरिक और आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

मन्त्र—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥

शब्दार्थ—

हे मनुष्यो !

द्यौः	=	प्रकाशयुक्त पदार्थ ।
शान्तिः	=	शान्तिकारक हों ।
अन्तरिक्षम्	=	दोनों लोकों के बीच का स्थान ।
शान्तिः	=	शान्तिकारक हो ।
पृथिवी शान्तिः	=	भूमि सुखकारी उपद्रव रहित हो ।
आपः शान्तिः	=	जल और प्राण शान्तिकारक हों ।
ओषधयः शान्तिः	=	सोमलतादि औषधियां सुखकारी हों ।
वनस्पतयः शान्तिः	=	वट आदि पेड़ शान्तिदायक हों ।
विश्वेदेवाः शान्तिः	=	सब विद्वान् उपद्रव निवारक हों ।
ब्रह्म शान्तिः	=	वेद सुखदायी हों ।
सर्वम् शान्तिः	=	सब वस्तुएं शान्तिकारक हों ।
शान्तिः	=	शान्ति ।
एव शान्तिः	=	वह शान्ति भी सुखदायक हो ।
सा मा शान्तिः एधि	=	मुझे तुम लोगों से भी बढ़कर वह शांति प्राप्त होवे ।

भावार्थ—

हम सब को ऐसे कार्य करने चाहिए कि प्रकाश आदि सभी पदार्थ सुख शान्ति देने वाले हों। शान्ति का अर्थ है अनुकूलता समता । जब तक हम सभी प्रकार के पदार्थों को पुरुषार्थ, ज्ञान और तप से अनुकूल नहीं बनाते उनके साथ समता प्राप्त नहीं करते हमें सुख अथवा शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

मन्त्र—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

शब्दार्थ—

देवहितम्	=	विद्वानों के हितकारी हैं।
शुक्रम्	=	शुद्धरूप है।
चक्षुः	=	नेत्र के समान प्रकाशक हैं।
पुरस्तात्	=	पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से।
उत् चरत्	=	श्रेष्ठ ज्ञाता हैं।
तत्	=	उस आप चेतन ब्रह्म को हम।
शतम् शरदः	=	सौ वर्ष तक
पश्येम	=	देखें।
शतम् शरदः	=	सौवर्षों तक शास्त्रों या मंगल वचनों को।
शृणुयाम	=	सुनें।
शतम् शरदः	=	सौ वर्ष तक।
अदीनाः स्याम	=	अदीन होकर रहें।
च	=	और।
शरदः शतात्	=	सौ वर्ष से।
भूयः	=	अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, पढ़ें उपदेश करें और स्वावलम्बी रहें।

भावार्थ—

हे प्रभो आप शुद्ध प्रकाशक हो, विद्वानों के हितकारी हो। अतः हम नीरोग और स्वावलम्बी रहकर सौ वर्ष तक आप को ही सर्वत्र देखें,

सुनें और चर्चा करते रहें, यदि आप की कृपा हो तो सौ वर्ष से भी अधिक पवित्र जीवन व्यतीत करें। सदा आनन्द भोगें और दूसरों को भी आनन्दित करें।

मन्त्र—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

शब्दार्थ—

यत्	=	जो।
दैवम्	=	आत्मा में रहने वाला उसका साधन।
दूरङ्गमम्	=	दूर-दूर ले जाने वाला।
ज्योतिषाम्	=	शब्द आदि विषयों के प्रकाशक कान आदि अंगों की।
ज्योतिः	=	प्रेरक।
एकम्	=	एक।
जाग्रतः	=	जागता हुआ।
दूरम् उत् आ एति	=	दूर-दूर भाग जाता है।
उ	=	और।
सुप्तस्य	=	सोते हुए का।
तथा एव	=	वैसे ही।
एति	=	भीतर जाता है।
तत्	=	वह।
मे	=	मेरा।
मनः	=	मन।
शिवसङ्कल्पमस्तु	=	शुभ इच्छाओं वाला हो।

भावार्थ—

जो मनुष्य मन को शुद्ध रखते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मेरा मन सदा शुभ विचारों वाला ही रहे क्योंकि यह मन ऐसा है जो जागता हुआ भी दूर-दूर जाता है और सोता हुआ भी, ज्योतियों का ज्योति है, सभी इन्द्रियों को गति देने वाला है। दूर-दूर जाता है।

मन्त्र—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२१

शब्दार्थ—

हे प्रभो आपकी प्रेरणा से—

येन	=	जिस :
अपसः	=	सदा शुभकर्म करने में लगा हुआ।
मनीषिणः	=	मन का दमन करने वाले बुद्धिमान् लोग।
यज्ञे	=	अग्निहोत्र तथा अन्य सर्वहित कामों में।
कर्माणि	=	शुभ कर्म।
कृण्वन्ति	=	करते हैं।
विदथेषु	=	ज्ञान प्रचार या संग्रामों में।
धीराः	=	धैर्यशाली।
यत्	=	जो।
अपूर्वम्	=	सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला।
प्रजानाम् अन्तः	=	प्राणीमात्र के हृदय में।

यक्षम्	=	पूजनीय एकीभूत ।
तत् मे मनः	=	वह मेरा मन ।
शिवसङ्कल्पमस्तु	=	अच्छे विचारों वाला हो ।

भावार्थ—

मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को शुद्ध रक्खें ।

मन्त्र—

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्प-
मस्तु ॥२२॥

शब्दार्थ—

यत्	=	जो ।
प्रज्ञानम्	=	ज्ञान का उपदेशक बुद्धिरूप ।
उत	=	और ।
चेतः	=	स्मृति का साधन ।
धृतिः	=	धैर्य स्वरूप ।
च	=	और लज्जादि कर्मों का हेतु ।
प्रजासु अन्तः	=	लोगों के अन्दर रहने वाला आत्मा साथी ।
अमृतं ज्योतिः	=	अमर प्रकाश ।
यस्मात् ऋते	=	जिसके विना ।
किंचन, कर्म	=	कोई काम ।
न क्रियते	=	नहीं किया जाता है ।

तत् मे मनः	=	वह मेरा मन।
शिवसङ्कल्पमस्तु	=	कल्याणकारी विचारों वाला रहे।

भावार्थ—

अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्ति वाला है, चार प्रकार से भीतर प्रकाश करता है। प्राणियों के समस्त कर्मों का साधक मन है वह शुभ विचारों वाला रहे।

मन्त्र—

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२३॥

शब्दार्थ—

हे मनुष्यो—

येन	=	जिस।
अमृतेन	=	नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से।
भूतम्	=	व्यतीत हुआ।
भुवनम्	=	वर्तमान काल सम्बन्धी और।
भविष्यत्	=	होने वाला।
सर्वम् इदम्	=	यह सारा तीनों कालों में होने वाला क्रियाकलाप।
परिगृहीतम्	=	सब ओर से पकड़ा हुआ है।
येन	=	जिससे।
सप्त होता	=	सात मनुष्य होता, पांच प्राण, छठा जीवात्मा और सातवां अव्यक्त ब्रह्म।
यज्ञः	=	अग्निष्टोमादि या विज्ञान रूप व्यवहार।

तायते	=	फैलाया जाता है।
तत्	=	वह।
मे	=	मेरा।
मनः	=	योगयुक्त चित्त।
शिवसङ्कल्पम्	=	शुभ विचारों वाला।
अस्तु	=	होवे।

भावार्थ—

जो चित्त योगाभ्यास से सिद्ध हो चुका है, जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों को जान जाता है, योगबल से सब सृष्टि को जानने वाला, जो ज्ञान, कर्म, उपासना का साधन है, वह सदा शुभ विचारों से भरा रहे। मोक्ष प्राप्ति के संकल्प वाला हो।

मन्त्र—

यस्मिन्नृचः साम यजूᳬषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥

शब्दार्थ—

यस्मिन्	=	जिस मन में।
रथनाभाविव	=	जैसे रथ के पहिये के नीचे के काष्ठ में
अराः	=	अरे लगे होते हैं वैसे।
ऋचः	=	ऋग्वेद।
साम	=	सामवेद।
यजूंषि	=	यजुर्वेद।
प्रतिष्ठिता	=	सब ओर से स्थित और।
यस्मिन्	=	जिसमें अथर्ववेद भी स्थित है।
यस्मिन्	=	जिसमें।

प्रजानाम्	=	प्राणियों का।
सर्वम्	=	समग्र।
चित्तम्	=	सब पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान।
ओतम्	=	पिरोया हुआ है।
तत्	=	वह।
मे	=	मेरा।
मनः	=	मन।
शिवसंकल्पमस्तु	=	कल्याणकारी यज्ञादि वेद-प्रचार के कार्य को करने का ही संकल्प रक्खे।

भावार्थ—

रथ के पहियों में लगे अरे की तरह जिस मन में ऋग्, यजुः, साम, अथर्वादि का ज्ञान भण्डार रहता है और सब पदार्थों का ज्ञान ओत-प्रोत है वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

मन्त्र—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥

शब्दार्थ—

यत्	=	जो मन।
सुषारथिः	=	जैसे सुन्दर सारथि।
अश्वानिव	=	सब ओर से घोड़ों की तरह चलाता है वैसे।
मनुष्यान्	=	मनुष्यादि प्राणियों को।
नेनीयते	=	इधर-उधर घुमाता है और।

अभीशुभिः	=	जैसे रस्सियों से ।
वाजिनः इव	=	वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में रखता है।
यत्	=	जो।
हृत्प्रतिष्ठम्	=	हृदय में स्थित।
अजिरम्	=	विषयादि में प्रेरक सदा युवा।
जविष्ठम्	=	अत्यन्त बलशाली है।
तत् मे मनः	—	वह मेरा मन।
शिवसंकल्पमस्तु	=	शुभ संकल्पों वाला रहे।

भावार्थ—

जो मन एक अच्छे सारथि की भाँति मनुष्यों को इधर-उधर घुमाता रहता है। बड़ा बलवान् और इन्द्रिय रूपी घोड़ों का चलाने वाला है। हृदय में रहता है, सदा युवकों की भांति आशापूर्ण रहकर काम करवाता है वह मेरा मन कल्याणकारी विचारों वाला हो ताकि उसकी प्रेरणा से हम सदा शुभ कर्म ही करते रहें।

मन्त्र—

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ।।२६।।

शब्दार्थ—

राजन्	=	हे स्वप्रकाशस्वरूप प्रभो आप।
स नः	=	वह आप हमारे।
गवे शम् पवस्व	=	गौ आदि पशुओं का कल्याण करो।
शम् जनाय	=	मनुष्यों का भी कल्याण हो।
अर्वते शम्	=	हमारे प्राण तथा घोड़ों के लिए सदा शुभ हो।

ओषधीभ्य: शम् —		पालक अन्नों के लिए भी शुभ करो। अर्थात् सब प्रकार के अन्न उगें, बढ़ें तथा फलें फूलें।

भावार्थ —

हे प्रकाशमान प्रभो हमारी सुख समृद्धि को बढ़ाने के लिए हमारी गऊ, घोड़े तथा जनसमूह का कल्याण करते रहो।

मन्त्र—

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

शब्दार्थ —

अन्तरिक्षम् नः	=	अन्तरिक्ष वातावरण हमें।
अभयं करति	=	शान्ति प्रदान करे।
उभे इमे	=	ये दोनों।
द्यावापृथिवी	=	पृथिवी तथा द्यो लोक।
अभयं करतः	=	अभय करें।
पश्चाद् अभयं	=	पीछे से या पश्चिम से भय न रहे।
अभयं पुरस्तात्	=	आगे या पूर्व से भी अभय हो।
उत्तरात् अधरात्	=	ऊपर से और नीचे से अथवा उत्तर और दक्षिण से।
नः अभयम् अस्तु	=	हमें अभय हो।

भावार्थ—

हे परमेश्वर हम ऐसे कार्य करें कि हमें वायुमण्डल, पृथिवी आकाश आदि से और सब दिशाओं से भय रहित करो। ज्ञान और कर्म के शुद्ध होने पर मनुष्य सब ओर से निर्भय रहता है।

मन्त्र—

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

शब्दार्थ—

मित्रात् अभयम्	=	मित्र से भय न रहे।
अमित्रात् अभयम्	=	शत्रु का भी डर न हो।
ज्ञातात् अभयम्	=	परिचितों से न डरें।
परोक्षात्	=	जो अनजान अचानक सामने आ जाएं उनसे भी।
अभयम्	=	न डरें।
नक्तम् अभयम्	=	रात्रि में न डरें।
दिवा अभयम्	=	दिन में भी न डरें।
सर्वा आशा	=	सारी दिशाएं सभी ओर के वासी।
मम मित्रं भवन्तु	=	मेरे सच्चे मित्र हों।

भावार्थ—

सब को अपने अनुकूल बनाकर हम सदा निर्भय रहें। प्रभु हमें ऐसी शक्ति तथा बुद्धि दे।

इति शान्तिकरणम्

इसके २०, २१, २२, २३, २४, २५ मन्त्र शिवसंकल्प सोने के समय बोले जाते हैं।

—□—

तृतीय पाठ

हवन-मन्त्र तथा विधि

वायु तथा चित्त की शुद्धि के लिए दोनों समय हवन करना आवश्यक है। इसे देवयज्ञ भी कहते हैं। हवनकुण्ड, घी (शुद्ध) सामग्री, कपूर, चमचा, जलपात्र, समिधाएं यह सब सामान हवन के समय पास रक्खें। सामान शुद्ध हो, घी को गरम करके छान लें। सामग्री ऋतु अनुकूल हो। पात्र मंजे हुए तथा जल से धोकर शुद्ध किए हों, पलाश, गूलर, पीपल आदि की कीड़े रहित समिधा होनी चाहिए।

सर्वप्रथम निम्नलिखित मन्त्रों के उच्चारण के साथ-साथ आचमन करें। प्रत्येक मन्त्र के साथ एक आचमन किया जाएगा।

१. आचमन-मन्त्र

(१) ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

शब्दार्थ—

अमृत	=	शुद्ध जल।
उपस्तरण	=	आश्रय।
असि	=	हो।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।

भावार्थ—

हे जल तुम सब के आश्रयभूत हो। यह कथन शुभ हो।

(२) ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।

शब्दार्थ—

अमृत	=	पवित्र जल।
अपिधानम्	=	ढकने वाला, रक्षक।
असि	=	हो।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।

भावार्थ—

हे पवित्र जल तुम सब को ढकने, रक्षा करने वाले हो, हमारा यह कथन सत्य हो।

(३) ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

तैत्ति० प्र० १०। आर० ३२।३५

शब्दार्थ—

सत्यं	=	सत्य कर्म।
यशः	=	यश।
श्रीः	=	सम्पत्ति।
मयि	=	मेरे में।
श्रीः	=	ऐश्वर्य।
श्रयतां	=	आश्रय ले, विराजमान हो।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।

भावार्थ—

हे प्रभु मुझे सत्य कर्मों के द्वारा यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो। मेरा यह कथन सत्य हो।

अंग स्पर्श-विधि

इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों को बोलते हुए प्रत्येक अंग का स्पर्श किया जाएगा। इस विधि का उद्देश्य अंगों को बलवान् तथा पवित्र बनाने की मन में भावना उत्पन्न करना है।

मन्त्र—

(३) ओं वाङ् म आस्येऽस्तु ।।१।।

शब्दार्थ—

वाङ्	=	बोलने की शक्ति ।
मे	=	मेरे ।
आस्ये	=	मुख में ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरे मुख में बोलने की शक्ति स्थिर रहे ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।।२।।

शब्दार्थ—

नसो:	=	नाक में ।
मे	=	मेरे ।
प्राणो	=	श्वास प्रश्वास की क्रिया ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरी नाक में श्वास प्रश्वास की क्रिया ठीक प्रकार होती रहे ।

ओ३म् अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु ।।३।।

शब्दार्थ—

अक्षणो:	=	आंखों में ।

	=	मेरी ।
चक्षुः	=	दर्शन शक्ति ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरी आंखों में देखने की शक्ति बनी रहे ।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥

शब्दार्थ—

कर्णयोः	=	कानों में ।
मे	=	मेरे ।
श्रोत्रम्	=	सुनने की शक्ति ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरे कानों में सुनने की शक्ति बनी रहे ।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥

शब्दार्थ—

बाह्वोः	=	भुजाओं में ।
मे	=	मेरे ।
बलम्	=	बल ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरी दोनों भुजाओं में बल बना रहे ।

ओ३म् ऊर्वोः मे ओजो ऽस्तु ॥६॥

शब्दार्थ—

ऊर्वोः	=	जंघाओं में ।
मे	=	मेरे ।
ओजो	=	दृढ़ शक्ति ।
अस्तु	=	हो ।

भावार्थ—

मेरी दोनों टांगों में दृढ़ धारणशक्ति बनी रहे ।

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥७॥

पारस्कर गृह्य० का० १ । कण्डिका ३ । सू० २५

शब्दार्थ—

अरिष्टानि	=	रोग रहित ।
मे	=	मेरे ।
अङ्गानि	=	सारे अङ्ग ।
तनूः	=	पुष्ट ।
तन्वा	=	शरीर के ।
सह	=	साथ ।
सन्तु	=	हों ।

भावार्थ—

मेरे अङ्ग रोगरहित और पुष्ट होकर सदा मेरे शरीर के साथ बने रहें ।

अग्न्याधान मन्त्र

आगे के मन्त्र से कपूर आदि से आग जलाएं।

मन्त्र—१ ओं भूर्भुवः स्वः।

गोभिल गृह्य० प्र० १। ऐ० १। सू० ११

शब्दार्थ—

भूः	=	सर्वाधार, सत्।
भुवः	=	दुखनाशक, चित्।
स्वः	=	सुखरूप, आनन्द।

भावार्थ—

हे प्रभु आप सर्वाधार, दुःखनाशक, सुखरूप हैं ऐसा ही हमारा यह यज्ञकर्म हो।

आगे के मन्त्र से उस अग्नि को हवन कुण्ड में सुसज्जित लकड़ियों के बीच में स्थापित करें।

मन्त्र २

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

यजु० ३।५।११

शब्दार्थ—

भूर्भुवःस्वः	=	इसका अर्थ लिखा जा चुका है।
द्यौः	=	द्युलोक प्रकाशयुक्त लोकों के स्थान।

इव = समान।
भूम्ना = महान् प्रभु के द्वारा उसकी कृपा से।
पृथिवीव = पृथ्वी के समान।
वरिम्णा = श्रेष्ठ प्रभु के द्वारा।
तस्याः = उसके (पृथ्वी के)।
ते = तेरे लिए।
पृथिवी = पृथ्वी लोक।
देवयजनि = जिस पर विद्वान् लोग यज्ञ करते हैं।
पृष्ठे = पीठ पर, धरातल पर।
अग्निम् = आग को।
अन्नादम् = द्रव्य खाने वाली को।
अन्नाद्याय = पचाने योग्य अन्न की प्राप्ति के लिए।
आदधे = स्थापित करता हूँ।

भावार्थ—

ईश्वर की कृपा से वह पृथ्वी जो कि प्रभु के समान ही विस्तृत है और जिस पर विद्वान् लोग यज्ञ करते हैं, उस पर जो अग्नि हव्य पदार्थों को खाती है उसको खाद्य अन्न की प्राप्ति के लिए मैं रखता हूँ या रखती हूँ। यज्ञ का उद्देश्य उत्तम अन्न की प्राप्ति है।

मन्त्र ३—

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँ सृजेथा-मयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥ यजु० १५.५०

शब्दार्थ—

उद्बुध्यस्व	=	आग, प्रज्वलित हो।
अग्ने	=	सुन्दर अग्ने, यजमान।
प्रतिजागृहि	=	जागृत हो, ज्ञान को प्राप्त कर।
त्वम्	=	तू।
इष्टा	=	लौकिक मनोरथों को पूरा करने वाले।
पूर्त्ते	=	मोक्ष के साधक कर्म।
सं	=	उसको।
सृजेथाम्	=	रचो।
अयं	=	यह अग्नि।
च	=	और।
अस्मिन्	=	इसमें।
सधस्थे	=	वेदि (बैठने के स्थान) में।
अध्युत्तरस्मिन्	=	नीचे अथवा ऊपर।
विश्वे	=	सारे।
देवाः	=	विद्वान् लोग।
यजमानश्च	=	और यज्ञ करने वाला।
सीदत	=	बैठें।

भावार्थ—

हे अग्नि तुम प्रज्वलित होओ। साथ ही यज्ञ करने वाला भी सावधान होकर यज्ञ करे। वेदि में आए हुए सारे विद्वान् तथा यजमान अपने-अपने नियत आसनों पर बैठें। प्रायः अग्नि रखते समय सब खड़े हो जाते थे, इसलिए इस मन्त्र में बैठने की ओर संकेत है।

४. समिदाधान मन्त्र (१)

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम । आश्व० १।१०।१२

शब्दार्थ—

अयम्	=	यह ।
त	=	तेरे लिए ।
इध्म	=	इंधन ।
आत्मा	=	व्यापक शक्ति ।
जातवेदस्	=	अग्नि, सर्वव्यापक प्रभु ।
तेन	=	इसके द्वारा ।
इध्यस्व	=	प्रज्वलित होना ।
वर्धस्व	=	बढ़ जा ।
च	=	और ।
इद्ध	=	बढ़ी हुई ।
वर्द्धय	=	बढ़ा ।
च	=	और ।
अस्मान्	=	हम को ।
प्रजया	=	प्रजा के द्वारा, जनता की ।
पशुभिः	=	पशुओं के द्वारा ।
ब्रह्मवर्चसेन	=	ब्रह्म तेज से, आध्यात्मिक ज्ञान से ।
अन्नाद्येन	=	अन्न के पचाने की शक्ति के द्वारा ।

समघय	=	अच्छी प्रकार बढ़ा।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।
इदम्	=	यह।
अग्नये	=	अग्नि के लिए, ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिए।
जातवेदसे	=	सर्वत्र व्यापक तथा सब को जानने वाले प्रभु के लिए।
इदम्	=	यह।
न	=	नहीं।
मम	=	मेरा।

भावार्थ—

हे ज्ञानस्वरूप सर्वव्यापक प्रभु तथा अग्नि यह लकड़ी जो भली प्रकार जल सकती है और मेरी आत्मा जो ज्ञान प्राप्त करने योग्य है, इस अग्नि की आत्मा है। यह अग्नि लकड़ी से बढ़े और हमारी प्रजा, पशु, ब्रह्मतेज तथा पाचन शक्ति को बढ़ाए। साथ ही मेरा आत्मिक ज्ञान भी आपके सहयोग से बढ़ता जाए। यह आहुति ज्ञानरूप सर्वव्यापक प्रभु के लिए है मेरे लिए नहीं।

उपरोक्त मन्त्र से आठ अगुल परिमाण की एक लकड़ी घी में डुबोकर जलती हुई आग में रखी जाए।

५. समिदाधान मन्त्र (२)

ओं समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम। यजु० ३।१

शब्दार्थ—

समिधा	=	भली प्रकार जलने वाली लकड़ियों से।

अग्निः	=	आग को।
वृवस्यत	=	बढ़ाओ।
घृतैः	=	घी आदि पदार्थों से।
बोधयत	=	जगाओ।
अतिथिम्	=	अतिथि को।
आस्मिन्	=	इसमें।
हव्या	=	जलने योग्य पदार्थ से।
जुहोतन	=	यज्ञ करो।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।
सु+आह	=	सु-शुभ, आह--कथन।

(शेष पूर्व मन्त्र में देख लें)

भावार्थ—

हे यज्ञ करने वाले इस अग्नि को अपना अतिथि समझ कर घी इत्यादि पदार्थों से इस को बढ़ा।

६--समिदाधान मन्त्र (३)

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।

शब्दार्थ—

सुसमिद्धाय	=	बहुत अच्छी प्रकार जलने वाली के लिए।
शोचिषे	=	शुद्ध के लिए।
घृतं	=	घी।

तीव्रं	=	तेज (तपाये हुए) को।
जुहोतन	=	हवन करो।

(शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—

इस पवित्र अग्नि को उत्तम प्रकार से तेज करने के लिए इसमें खूब तपाया हुआ घी डालो। (शेष पूर्ववत्)

विधि—उपरोक्त दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा आग में डाली जाए।

७--समिदाधान मन्त्र (४)

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नये अङ्गिरसे इदन्न मम।

तीनों मन्त्र यजु० अ० ३। मन्त्र १, २, ३

शब्दार्थ—

तम्	=	उसको।
त्वा	=	तुझे।
समिद्भिः	=	समिधाओं से।
अङ्गिरो	=	गमनशील अग्ने।
घृतेन	=	घी के द्वारा।
वर्धयामसि	=	बढ़ाते हैं।
बृहत्	=	बहुत बड़े।
शोचा	=	पवित्र प्रकाश के लिए, ज्ञान के लिए
यविष्ठ्य	=	बल के लिए।

(शेष शब्दों के अर्थ पूर्व मन्त्र में हैं।)

भावार्थ—

हे अग्ने तू गतिशील है अतः बल और ज्ञान की प्राप्ति के लिए हम घी द्वारा तुझे बढ़ाते हैं।

इस मन्त्र से तीसरी समिधा घी में डुबोकर अग्नि में डाली जाए।

८—मन्त्र

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम। आश्व० १.१०

आश्वलायन गृह्यसूत्र १ अ०। १० कण्डिका। २१सूत्र

इस मन्त्र का शब्दार्थ तथा भावार्थ मन्त्र सं० नं० ४ में लिखा जा चुका है।

विधि—इस मन्त्र को पांच बार बोलकर आहुति देनी चाहिए। प्रति आहुति के साथ इस मन्त्र को बोलना चाहिए।

९—जल प्रसेचन मन्त्र

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व। गोभिल० गृ० १३।१

शब्दार्थ—

अदिते	=	हे अखण्ड देव।
अनुमन्यस्व	=	अनुकूल, सुन्दर बुद्धि दीजिए।

भावार्थ—

हे सदा एकरस ईश्वर! हमें अच्छी बुद्धि दीजिए।

विधि—इस मन्त्र को बोलकर हाथ में जल लें और वह अंजलि का जल, कुण्ड के पूर्व में छिड़कें।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ।।१०।। गो० १।३।२

शब्दार्थ —

अनुमते	=	व्यापक ज्ञानस्वरूप प्रभो !
अनुमन्यस्व	=	अनुकूल बुद्धि दीजिए।

भावार्थ—

हे व्यापक ज्ञानरूप ईश्वर आप हमारी बुद्धि को ठीक रखिए।

विधि—इस मन्त्र से हाथ में जल लेकर कुण्ड के पश्चिम में छोड़ दें।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ।।११।। गो० १।३।३

गोभिल गृ: सू० प्र० क० १३। सूत्र ३

शब्दार्थ—

सरस्वती	=	हे ज्ञानस्वरूप।
अनुमन्यस्व	=	अनुकूल, सीधी बुद्धि दीजिए।

भावार्थ—

हे ज्ञान के देव, हमारी बुद्धि सदा स्थिर रहे।

विधि—इस मन्त्र से वेदी के उत्तर में जल छिड़कें।

मन्त्र—

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्रसुवः यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।१२।।

यजु० अ० ३०। म० १

शब्दार्थ—

देव	=	हे दिव्य गुणों वाले ईश्वर !
सवितः	=	उत्पन्न करने हारे।
प्रसुव	=	उत्पन्न कर।
यज्ञं	=	उत्तम कार्यों को।
प्रसव	=	बढ़ा।
यज्ञपति	=	यज्ञ करने वालों को। (उपकारियों को)।
भगाय	=	ऐश्वर्य के लिए।
दिव्यो	=	अलौकिक, उत्कृष्ट।
गन्धर्वः	=	वाणी के स्वामी। पृथिवी के स्वामी।
केतपूः	=	विज्ञान को पवित्र करने वाले।
केतम्	=	विज्ञान को।
नः	=	हमारे।
पुनातु	=	पवित्र करो।
वाचस्पतिः	=	वाणी के स्वामी।
वाचम्	=	वाणी को।
नः	=	हमारी।
स्वदतु	=	मधुर बनाओ।

भावार्थ—

हे सर्वोत्पादक प्रकाशक देव ! आप ऐश्वर्य के लिए शिल्पादि विविध यज्ञों को उत्पन्न कीजिए। हे शुद्ध पृथिवी के धारक आप विज्ञान के पवित्र कर्ता हो। आप हमारी बुद्धि को पवित्र करो। आप वाणी के स्वामी हो, इसलिए हमारी वाणी को भी मधुर बनाओ।

विधि—इस मन्त्र को बोलकर यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल छिड़क दो।

मन्त्र—

ओम् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये इदन्न मम । १३
यजु० २२।२७

शब्दार्थ—

अग्नये = आग के लिए, प्रकाशरूप प्रभु के लिए।

भावार्थ—

हे प्रकाशक परमात्मा आप के लिए और इस आग के लिए यह आहुति हो, मेरे लिए नहीं। (उत्तर में)

मन्त्र—

ओं सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय इदन्न मम । १४
यजु० २२।२७

शब्दार्थ—

सोमाय = एक उत्तम औषधि सोम के लिए, सौख्य रूप प्रभु के लिए।

भावार्थ—

सोम रसादि के लिए तथा सौख्य गुण वाले परमात्मा की प्रीति के लिए आहुति है। (दक्षिण में)

मन्त्र—

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये इदन्न मम । १५
यजु० २२।२७

शब्दार्थ—

प्रजापतये	=	सृष्टि के स्वामी के लिए ।

भावार्थ—

हे प्रजापति यह आहुति आप के लिए है । मेरे लिए नहीं ।

मन्त्र—

ओम् इन्द्राय स्वाहा ।। इदम् इन्द्राय इदन्न मम । १६.
यजु० २२।२७

शब्दार्थ—

इन्द्राय	=	ऐश्वर्य के स्वामी के लिए ।

भावार्थ—

यह आहुति ऐश्वर्य वाले भगवान के लिए है, मेरे लिए नहीं ।
(ये दोनों मध्य में)

विधि—ऊपर लिखे हुए मन्त्रों को बोलकर घी की आहुति डाली जाएं ।

ओं यदस्य कर्मणो—यह मन्त्र सब से पीछे लिखा गया है । परन्तु यहां पर बोला जाएगा ।

प्रातः काल के मन्त्र

मन्त्र—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १७ यजु० ३।६

शब्दार्थ—

सूर्यो	=	सूर्य, तेजस्वी ईश्वर।
ज्योतिः	=	प्रकाश, ज्ञान।

भावार्थ—

तेजरूप प्रभु की ज्योति से यह सूर्य अपनी ज्योति प्रदान करता रहे।

मन्त्र—

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥१८ यजु० ३।६

शब्दार्थ—

सूर्यः	=	जगत् को उत्पन्न करने वाला।
वर्चो	=	तेज।
ज्योतिः	=	प्रकाश। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—

ज्योतिरूप प्रभु का तेज हमें, तेज प्रदान करे।

मन्त्र—

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥१६॥ यजु० ३।६

इस मन्त्र का शब्दार्थ तथा भावार्थ १७वें मन्त्र के समान है।

मन्त्र—

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ २०
यजु० ३।१०

शब्दार्थ—

सजूर्देवेन	=	प्रकाश से युक्त सूर्यदेव।
सवित्रा	=	सूर्य के द्वारा।
सजूर्	=	सूर्य का प्रकाश।
उषसा	=	उषा काल के द्वारा।
इन्द्रवत्या	=	ऐश्वर्य वाली से।
जुषाणः	=	आहुति देते हुए।
सूर्यो	=	सूर्य, उत्पादक प्रभु।
वेतु	=	फैला देवे।

भावार्थ—

उषा से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए सूर्य इस आहुति को ग्रहण कर सर्वत्र फैला देवे। निम्नलिखित मन्त्र विशेष रूप से सायंकाल के हवन में आहुति देने के लिए है।

मन्त्र—

ओ३म् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ २१ यजु० ३।९

शब्दार्थ—

अग्निः	=	प्रकाश रूप नेता प्रभु।
ज्योतिः	=	प्रकाश।

भावार्थ—

अग्निरूप ज्योतिःस्वरूप, प्रभु के लिए यह आहुति है।

मन्त्र—

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २२ यजु० ३।६

शब्दार्थ—

पूर्व मन्त्रों में इन शब्दों के अर्थ लिखित हैं।

भावार्थ—

अग्निरूप तेजस्वी ईश्वर के लिए यह आहुति है।

मन्त्र—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ २३ यजु० ३।६

अर्थ—शब्दार्थ भावार्थ २१वें मन्त्र के समान हैं।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो अग्नि-
र्वेतु स्वाहा ॥ २४ यजु० ३।१०

शब्दार्थ—

पूर्व मन्त्र में ये शब्द आ चुके हैं वहां इनका अर्थ देख लें।

भावार्थ—

ऐश्वर्ययुक्त रात्रि के समय यह अग्नि आहुति को सर्वत्र फैला देवे।

मन्त्र—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदं न
मम। २५

शब्दार्थ—

भूः	=	सर्वाधार।
अग्नये	=	अग्नि के लिए।
प्राणाय	=	प्राण शक्ति के लिए।

शेष पूर्व मन्त्रों के समान।

भावार्थ—

अग्निरूप प्राणरूप ईश्वर के लिए मैं यह आहुति देता हूँ या देती हूँ।

मन्त्र—

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ इदं वायवेऽपानाय इदं न मम। २६

शब्दार्थ—

भुवः	=	दुःखनाशक।
वायवे	=	वायु रूप प्रभु के लिए।
अपानाय	=	नीचे की ओर जाने वाली वायु को शक्ति देने के लिए।

भावार्थ—

अपान शक्ति वाली वायु को गति देने वाले ईश्वर के लिए यह आहुति है।

मन्त्र—

ओम् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम॥ २७

शब्दार्थ—

स्वः	=	सुखरूप।
आदित्याय	=	सूर्य रूप।
व्यानाय	=	ऊर्ध्व वायु के लिए।

मन्त्र—

ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ।२८

पार० १।३।४

भावार्थ—

भूः	=	सर्वाधार।
भुवः	=	दुःखनाशक।
स्वः	=	सुखरूप।
अग्नि	=	प्रकाशरूप प्रभु।
वायु	=	वेगवान् ईश्वर।
आदित्येभ्यः	=	सूर्य, प्रकाशरूप भगवान्।
प्राण	=	धारण शक्ति।
अपान	=	संहार शक्ति।
व्यानेभ्यः	=	उत्पन्न करने की शक्ति।

(शेष शब्दार्थ पूर्ववत्)

भावार्थ—

अग्नि, वायु, आदित्यरूप, प्राण, अपान, व्यानरूप परमेश्वर के लिए यह आहुति देता हूँ।

मन्त्र—

ओ३म् आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा।२६

तैत्ति० १०।१५

आपो	=	सर्वव्यापक।
ज्योतिः	=	प्रकाशरूप।
रसो	=	रसरूप।
अमृतं	=	अमृतरूप।
ब्रह्म	=	जो सब से बड़ा है।

भूः, भुवः, स्वः यह शब्द पूर्व मन्त्रों में आ चुके हैं स्वर् का वही अर्थ है जो स्वः का है।

भावार्थ—

सर्वत्र व्यापक, ज्योति स्वरूप, रसरूप, जो अमर और सब से बड़ा है, प्राणों का प्राण है, जगदुत्पादक है, सुखरूप है उस ईश्वर के लिए मैं यह आहुति देता हूँ या देती हूँ।

मन्त्र—

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥३० यजु० ३२।१४

शब्दार्थ—

यां	=	जिस।
मेधां	=	बुद्धि को।
देवगणाः	=	विद्वान् लोग।
पितरः	=	कर्मयोगी।
च	=	और।
उपासते	=	उपासना करते हैं।
तया	=	उसी (बुद्धि) के द्वारा।
माम्	=	मुझ को।
अद्य	=	आज।
मेधया	=	बुद्धि के द्वारा।
अग्ने	=	हे प्रकाशरूप प्रभो !

मेधाविनं	=	बुद्धिमान् ।
कुरु	=	करो ।
स्वाहा	=	मेरा यह कथन सत्य हो ।

भावार्थ—

जिस धारण और ग्रहण करने की शक्तिवाली बुद्धि को देवता अर्थात् विद्वान् लोग तथा पितर लोग धारण करते हैं उसी सात्त्विक मेधाबुद्धि से हे प्रभो आप मुझे बुद्धिमान् अथवा बुद्धिमती बनाइये ।

मन्त्र—

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा ॥३१॥

यजु० ३०।३

नोट—इस मन्त्र का शब्दार्थ तथा भावार्थ पीछे प्रार्थना मन्त्रों में लिख आये हैं । वहीं देख लें ।

मन्त्र—

ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ॥३२॥

यजु० ४०।१६

इस मन्त्र के अर्थ तथा भावार्थ प्रार्थना-मन्त्रों में देख लें ।

विधि—इन उपरोक्त मन्त्रों से घी के साथ सामग्री की आहुति देते जाएं ।

मन्त्र—

ओं सर्वं वै पूर्णं ७ स्वाहा ॥ ३३

शब्दार्थ—

सर्वं	=	यह सारा यज्ञ-कर्म ।

वै	=	निश्चय से।
पूर्णंᳩ	=	उस पूर्ण प्रभु के लिए (सर्वहिताय)
स्वाहा	=	शुभ हो।

भावार्थ—

हमारा यह सम्पूर्ण यज्ञ उस पूर्ण प्रभु के समर्पित है हमारा यह कथन सत्य हो, शुभ हो।

प्रधान होम सम्बन्धी-आज्याहुति मन्त्र

आघारावाज्याहुति मन्त्र—

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम।

ओम् सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदं न मम।

आज्यभागाहुति मन्त्र—

ओम् प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदं न मम।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदम् इन्द्राय इदं न मम।

व्याहृति आहुति मन्त्र—

१. ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम।

२. ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदं न मम।

३. ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदम् आदित्याय इदं न मम।

४. ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्य इदं न मम।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते इदं न मम। शतपथ १४।९।४।२४

यत्	=	जो।
अस्य	=	इस का।
कर्मणो	=	कार्य का।
अति+अरीरिचं	=	सीमा से बढ़ गया हो।
यत् वा	=	अथवा जो।
न्यूनम्	=	सीमा से कम।
इह आकरम्	=	इस में मैंने किया हो।
अग्निष्टत्	=	प्रकाशरूप प्रभो वह।
सु-इष्टकृत्	=	सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले।
विद्यात्	=	जानते हो।
सर्वं	=	सब।
स्विष्टं	=	हमारे सुन्दर इष्ट को।
सुहुतं	=	जो मैंने हवन किया है उसको शुभ।
करोतु	=	करिये।
मे	=	मेरे लिए।
अग्नये	=	प्रकाशरूप अग्नि के लिए।
स्विष्टकृते	=	सुन्दर इच्छाओं को पूर्ण करने वाले के लिए।
सुहुतहुते	=	अच्छी प्रकार से किए हुए हवन में।
सर्वप्रायश्चित्त-	=	समस्त त्रुटियों के लिए दण्डरूप।
आहुतीनां	=	दी हुई आहुतियों का।
कामानां	=	कामनाओं के।
समर्द्धयित्रे	=	बढ़ाने वाले।
सर्वान्नः	=	समस्त हमारी।
कामान्	=	कामनाओं को।

समर्द्धय	=	बढ़ाओ।
स्वाहा	=	कथन शुभ हो।
इदमग्नये	=	यह (आहुति) अग्नि के लिए।
स्विष्टकृते	=	सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले के लिए।
इदम् न मम	=	यह मेरे लिए नहीं।

भावार्थ—

हे सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रकाशरूप प्रभो ! जो कुछ भी मैंने इस यज्ञ में जो कि मैंने सुन्दर कामनाओं से किया है मर्यादा से बढ़कर अथवा कम किया हो उनको पूर्ण करने के लिए, प्रायश्चित्त के रूप में यह आहुति देता हूँ। आप कृपा करके मेरी सभी शुभ भावनाओं को पूर्ण करें तथा बढ़ाएं। मेरी यह आहुति तेरे लिए है मेरे अपने लिए नहीं।

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ यजु० १८।२८

इसे मन में बोल आहुति दें।

मन्त्र—

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम। १ ऋ० ९।५६।१९

भावार्थ—

हे सर्वाधार, दुःखनाशक, सुखरूप, प्रकाश स्वरूप भगवन् ! आप हमारे जीवनों को पवित्र करते तथा बढ़ाते हो। हमें बल और अन्न प्रदान करो। दुष्टों को दूर करो। मेरी यह वाणी सत्य हो। यह हवि पवित्र करने वाले प्रभु के लिए है, मेरे लिए नहीं।

मन्त्र—

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम।२
ऋ० ९।६।२०

भावार्थ—

जो अग्नि एक को देखने वाला, पवित्र करने वाला, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य अनार्य लोगों का भी पालन करने वाला है, सब धार्मिक कार्यों में प्रमुख होकर सहायता करने वाला, अत्यन्त बलवान् है। उसे हम सब धर्म-कर्म की सफलता के लिए स्मरण करते हैं।

मन्त्र—

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम। ३
ऋ० ९।६६।२१

भावार्थ—

हे सर्वाधार, दुःखापहारक, प्रकाशमान प्रभो! आप अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं। आप हम में तेज, पूर्ण ऐश्वर्य और पुष्टि धारण कराते हुए पवित्र करें।

मन्त्र—

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम। ४

इसका अर्थ प्रार्थना मन्त्रों में देखें।

ऋ० १०। १२१।१०

अष्टाज्याहुति मन्त्र—२

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदन्न मम। १

ऋ० ४।१।४

भावार्थ—

हे अग्ने! सुखस्वरूप! परमात्मन् आप कर्मों के फलदाता, क्रोध को जानने वाले, आप उस क्रोध को दूर करो, यजनशील तथा यज्ञीय भागों का वहन करने वाले आप अत्यन्त दीप्त होकर. हमारे सम्पूर्ण पापों को दूर करो।

मन्त्र—

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम् इदन्न मम। २

ऋ० ४।१।५

हे अग्ने! परमात्मन्! हमारे सदा के रक्षक आप आज के प्रातःकाल में यज्ञादि की सिद्धि के लिए समीपवर्ती होवें, हमें श्रेष्ठ उपदेशक दीजिए। इस प्रकार हमारे सुखदायक यज्ञ के भाग को प्राप्त कीजिए।

मन्त्र—

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम। ३ ऋ० १।२५।१९

हे वरुण! तुम आज मेरी इस प्रार्थना को सुनो और मुझे सुखी करो। अपनी रक्षा के लिए मैं आप की स्तुति करता हूं।

मन्त्र—

ओं तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय इदन्न मम। ४ ऋ० १।२४।११

हे जगत्प्रभो ! हवि आदि देकर जिस आयु की यजमान लोग तुम्हारा सत्कार करते हुए, आशा करते हैं, उस ही प्रसिद्ध सौ वर्ष की आयु को मैं भी तुम से मांगता हूं। हे प्रभु हमारी आयु में न्यूनता न हो !

मन्त्र—

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम। ५

कात्या० श्रौत सूत्र २५।१।११

हे वरुण ! यज्ञ के मार्ग में जो सैंकड़ों हजारों विघ्न हैं आप हमें उनसे दूर रखिये।

मन्त्र—

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे इदन्न मम। ६ कात्या० श्रौत सूत्र २५।१।११

भावार्थ—

हे कल्याण कारक अग्ने ! तुम सब जगह व्यापक और कुत्सित कर्म करने वालों को पवित्र करने वाले हो। अच्छा बनाने वाले हो। हे अग्ने तुम हमारे यज्ञों के द्वारा संसार में सुख सम्पत्ति फैलाते हो, हमें ऐसे अन्न तथा औषधियां प्रदान कीजिए जिससे हमें सुख प्राप्त हो।

मन्त्र—

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च इदन्न मम। ७

ऋ० १।२४।१५

हे वरुण। आप हमारे उत्तम (लोकैषणा) मध्यम (पुत्रैषणा) निकृष्ट (वित्तैषणा) बन्धन को ढीला कर दीजिये और फिर हम लोग तुम्हारे शासन में पाप कर्मों से अलग रहकर मुक्ति सुख के लिए शुभ कार्य करते रहें।

मन्त्र—

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्याम् इदन्न मम। ८। यजु० ५।३

हे परमात्मन्! हम सब समान मन वाले एक दूसरे के सहायक तथा परस्पर सद्भावना वाले बनें। हमारे यज्ञ कार्य निर्विघ्न हों। यज्ञकर्ता सदैव सुखी रहें।

अवशेषाहुति मन्त्र

मन्त्र—

ओं वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥३४

शब्दार्थ—

वसोः = हे सब में रहने वाले यज्ञ। यजमान।

पवित्रम्	=	पवित्र।
असि	=	हो।
शतधारं	=	सैकड़ों प्रकार से धारण करने को।
वसोः	=	हे सब में रहने वाले।
पवित्रम्	=	पवित्र।
असि	=	हो।
सहस्रधारं	=	हजारों प्रकार से धारण करने वाले।
देवाः	=	देव लोग।
त्वा	=	तुझे।
सविता	=	उत्पन्न करने वाले।
पुनातु	=	पवित्र करें।
पवित्रेण	=	पवित्र के द्वारा।
शतधारेण	=	सैकड़ों प्रकार से धारण करने वाले के द्वारा।
सुप्वा	=	सुसेव्य।
कामधुक्षः	=	कामनाओं को देने वाला।

भावार्थ—

हे यज्ञ ! तू तथा यज्ञरूप माव तू सब कुछ धारण करने वाला है, पवित्र है, तू हजारों और सैकड़ों (शक्तियों) को धारण करने वाला है।

उपकारक और रचयिता विद्वान् तुझे सदा पवित्र करें। यह पवित्र यज्ञ सब को करना चाहिए क्योंकि यह सब कामनाओं को देने वाला है। इस मन्त्र में यज्ञ का महत्त्व बताया गया है।

ईश-प्रार्थना

ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

हे भगवन् हम सदा कल्याण के मार्ग पर चलें। हे ईश्वर आपने सूर्य और चन्द्रमा को बनाया है। तारे, वायु, जल आदि की भी सृष्टि की है। तेरी सारी रचना का कार्य नियमों के अधीन चल रहा है। इस सारे विश्व का शासक तू ही है। तूने ही सर्वप्रथम ऋत और सत्य को बनाकर इस ससार को बनाया और अब तू ही इस संसार पर शासन कर रहा है। तेरे नियम इतने दृढ़ हैं कि कोई भी इसका उल्लंघन नहीं कर सकता। दिन-रात, ऋतु, क्रम सब बारी-बारी से आते जाते रहते हैं। कभी वर्षा होती है तो कभी धूप चमकने लगती है। इसी का यह फल है कि हमें भांति-भांति की प्राण देने वाली वस्तुए अन्न, फल-फूल के रूप में प्राप्त हो रही हैं। उनका उपभोग करते हुए हम कभी तेरे नियमों तथा तुझ नियामक को न भूलें। हे भगवन् जब हमारे हृदय में अज्ञान का अन्धकार छा जाता है तो हम तेरे बनाए हुए नियमों का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर देते हैं उसका फल यह होता है कि हम नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं, आप से रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। परन्तु भगवन् आप तो न्यायकारी हैं, पर दयालु भी हैं। आप हम पर ऐसी कृपा करें कि हम तुझे तथा तेरे नियमों को याद रखते हुए सब कार्य ठीक प्रकार से करें, सदा अच्छे कार्य करें। दानी बनें ज्ञान की प्राप्ति में मन को लगावें, सूर्य और चांद के समान विद्वानों का अनुसरण करें उनके बताए हुए मार्ग पर चलें।

हे प्रभु हमारे हृदय से स्वार्थभाव का नाश करें। इस स्वार्थ के अन्धकार में हमें कुछ नहीं सूझता, हम आज अपने ही शत्रु हो रहे हैं, केवल भोगना चाहते हैं। बिना देवताओं को दिए, बिना यज्ञ किए, बिना दान किए, हम देवताओं से योग्य पदार्थ छीन लेना चाहते हैं।

प्रभो हमारे हृदयों में त्याग की गंगा बहाइए ताकि हमारा चित्त जो रेगिस्तान बना हुआ है, उपजाऊ बने। उसमें आप के प्रेम तथा मानव-मात्र के लिए कल्याण के भाव उत्पन्न हों। हम दानी बनें, उदार बनें, परोपकारी बनें। हमारा जीवन केवल अपने लिए ही न हो वरन विश्व के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही हम समस्त कार्य करें। भगवन् आप हमारी इस छोटी सी प्रार्थना को स्वीकार करें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सोते समय प्रार्थना के मन्त्र

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥

यजु० १-६

पाक्षिक यज्ञ—

९. पौर्णमासी

स्थाली पाक की तीन आहुतियां—

ओ३म् अग्नये स्वाहा ।

ज्ञान स्वरूप प्रभु के लिए यह सुन्दर आहुति है ।

ओ३म् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा ।

प्राण, अपान के स्वामी जगदीश्वर के लिए यह आहुति है ।

ओ३म् विष्णवे स्वाहा ।

सर्व व्यापक परमेश्वर के लिए सुन्दर आहुति है ।

१०. अमावस्या—

पूर्णिमा यज्ञ की भांति सब विधि हैं ।

१. ओ३म् अग्नये स्वाहा ।

२. ओ३म् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ।

३. ओ३म् विष्णवे स्वाहा ।

३. पितृ यज्ञ—

जीवित देवों, ऋषियों अर्थात् विद्वानों और अपने माता-पिता आदि बड़ों का सम्मान करना उनके आदेशों पर चलना उनकी चलाई हुई श्रेष्ठ परम्पराओं की रक्षा करना यही पितृ-यज्ञ है । माता-पिता को वसु, पितामह को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं । यह सनातन श्रुति है ।

४. बलिवैश्वदेव यज्ञ—

लवण को छोड़कर मिष्टान्न के द्वारा निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति दें।

ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥
ज्ञान स्वरूप प्रभु के लिए।

ओ३म् सोमाय स्वाहा ॥
उत्पन्न और पुष्ट करने वाले प्रभु के लिए यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥
प्राणियों के जीवन तथा दुःख नाश के लिए।

ओ३म् विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा ॥
संसार को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर तथा विद्वान् लोगों के लिए।

ओ३म् धन्वन्तरये स्वाहा ॥
जन्म मरण आदि रोगों के नाश करने वाले परमात्मा के लिए।

ओ३म् कुह्वै स्वाहा ॥
सब के साथ बसी हुई शक्ति प्रभु के लिए।

ओ३म् अनुमत्यै स्वाहा ॥
सम्पूर्ण परिमेय तथा आकारवान् पदार्थों के आधार प्रभु के लिए।

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ॥
जगत् के स्वामी प्रजापति जगदीश्वर के लिए।

ओ३म् सह द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा ॥
अग्नि और पृथिवी के उत्पादक ईश्वर के लिए यह सुन्दर आहुति है।

ओ३म् स्विष्टकृते स्वाहा ।।

सब के इष्ट सुख देने वाले परमात्मा के लिए यह सुन्दर आहुति है।

इन सभी मन्त्रों से अग्नि में आहुति छोड़ें तत्पश्चात् संस्कार विधि में दिये विधि से थाली या थाल में पूर्व दिशादि में क्रमानुसार भाग रक्खें।

५. अतिथि यज्ञ—

अकस्मात् आए हुए धार्मिक विद्वानों का सत्कार करना उनसे उपदेश ग्रहण करके उन्हें भोजनादि से तृप्त करना चाहिए।

उनके आने पर तीन प्रकार का जल लेकर उसे तृप्त तथा शीतल करे। पश्चात् आसन पर बिठाकर उत्तम खानपानादि से सेवा शुश्रूषा करके उनके सत्संग तथा सदुपदेश का लाभ उठायें।

इन पाँच महायज्ञों का फल—

१. ब्रह्मयज्ञ से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि।

२. अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वर्षा द्वारा संसार को सुख प्राप्त होगा। इसे देव यज्ञ भी कहते हैं। शुद्ध वायु से आरोग्यता और वृष्टि से अन्न आदि की उत्पत्ति होगी। इसके द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होगा। इसलिए इसे देव यज्ञ कहते हैं।

३. पितृयज्ञ से (गृहस्थ) जब माता-पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। इससे सत्यासत्य का निर्णय कर, सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से वह सुखी

होगा। दूसरे कृतज्ञता जैसी सेवा माता-पिता और गुरु ने अपनी सन्तान और शिष्य की की है उसका प्रत्युपकार भी हो जायेगा जो आवश्यक है।

४. बलिवैश्वदेव यज्ञ हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशाला शुद्ध रहेगी और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार हो जायेगा। मनुष्यों में हिंसा की भावना कभी जन्म नहीं लेगी।

५. अतिथि यज्ञ—

जब तक जगत् में उत्तम अतिथि नहीं होते तब तक समाज की उन्नति नहीं होती। उनके सब देशों में भ्रमण करने से और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होगी। सर्वत्र सत्यज्ञान की सहज में प्राप्ति हो जायेगी। मनुष्य मात्र में एक ही धर्मभाव स्थिर रहेगा। बिना अतिथियों के सन्देह की निवृत्ति नहीं होती, सन्देह निवृत्ति के बिना दृढ़ निश्चय नहीं होता। पञ्च यज्ञ करना गृहस्थों का अनिवार्य धर्म है इसीलिए कहा—यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है।

भजन पञ्चयज्ञ

ओ३म् जपो ओ३म् जपो धर ध्यान, सब मिल ओ३म् जपो।
सुबह सवेरे, अमृत वेले, करो सुधा-रस पान ,, ,, ,,
प्रातःकाल करो स्नान, ओ३म् नाम का करके ध्यान।
सन्ध्या करो सुख मान, मिलकर ओम् जपो।
ओ३म् अक्षर का करो विचार, ओ३म् है सारे सुख का सार।
ओ३म् को अपना जान। मिलकर०

चुन चुन समिधा यज्ञ रचाओ, श्रेष्ठ सुगन्धि घर में लावो।
घी हो शुद्ध महान्। मिलकर०
वेद मन्त्र सब मिलकर गाओ, स्वाहा स्वाहा की ध्वनि गुंजाओ।
गूंजे जय जय गान। मिलकर०
उपदेशक विद्वान् जो आएं, ज्ञान की वे वर्षा बरसाएं।
बढ़ता जाए ज्ञान। मिलकर०
मात-पिता की सेवा करना, उनके वचनों को आचरना।
करना सदा सम्मान। मिलकर०
भूखा प्यासा घर जो आए, अन्न वस्त्र और जल वह पाए।
जानो अतिथि भगवान्। मिलकर०
जीव जन्तु जो छोटे-छोटे, वे भी परम पिता के बेटे।
सब का रखना ध्यान। मिलकर०
दान दक्षिणा देते रहना, दिव्य गुणों को लेते रहना।
जीवन बने महान्। मिलकर०
पञ्च यज्ञ दयानन्द बताए, जो हैं शास्त्रों ने सिखलाए।
उन को करो प्रमाण। मिलकर०
यज्ञ-भाव जग में भर जाए, प्रेमलता सब थल लहराए।
विश्व का हो कल्याण। मिलकर०

भोजन समय का मन्त्र

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

हे अन्न के देने वाले स्वामी! हमें रोग रहित और पुष्टिकारक अन्न के भण्डार को दीजिए। अन्नादि खाद्य पदार्थों का दान करने वालों को खूब बढ़ाइए, उनका कल्याण कीजिए। हमारे दो पग वाले मनुष्यादि तथा चार पग वाले गौ आदि पशुओं को बलकारक अन्न दीजिए।

जन्म दिवस-वर्षगांठ

प्रभु से बल बुद्धि और पथ-प्रदर्शन के लिए, जीवन को लम्बा और सुखी बनाने के लिए जन्म-दिवस मनाना आवश्यक है।

कैसे मनाए ?

जिस दिन किसी बालक-बालिका, युवा-युवती अथवा किसी भी आयु के व्यक्ति का जन्म-दिवस हो। उस दिन वे प्रातः स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहिन आचमन और अंगस्पर्श के मन्त्रों से आचमन तथा अंगस्पर्श करें। तत्पश्चात् प्रार्थना-मन्त्र, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्र बोलें। उसके बाद अग्न्याधान आदि करके विशेष यज्ञ करें। तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति दिलवावें अर्थ भी समझा दें।

मन्त्र १—

उपप्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घायुः करोतु मे।। अथर्व० ७।३२।१

अर्थ—

हे प्रिय स्तुति योग्य ईश्वर ! मेरी दीर्घायु करो। जैसे मैं आहुति द्वारा यज्ञ की अग्नि को बढ़ा रहा हूं। ऐसे ही मैं सात्विक अन्न को प्राप्त करके यौवन को धारण करूं और प्रतिदिन अपना जन्मदिन मनाया करूं।

मन्त्र २—

ओ३म् इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीव्यासमहम्।
सर्वमायुर्जीव्यासमहम्।। अथर्व १९।७०

अर्थ—

हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर तू हमें जीवन धारण करा। हे सूर्य हे इन्द्र,

हे देवगण मैं दीर्घ जीवन प्राप्त करूं। इनके पश्चात् सब पुष्प वर्षा करके आशीर्वाद दें। हे वत्स त्वं जीव शरदः शतम् वर्धमानः। आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः।

आशीर्वाद का गीत

प्रभो यह बालक हो, आयुष्मान्, प्रभो ! यह…
ज्योति है जिस कुल की यह, हो उसका उत्थान। प्रभो०
ब्रह्मचारी ईश्वर विश्वासी, गुणग्राही होवे श्रीमान्।
धर्म में-निष्ठा सत्यव्रती हो, वेदों का होवे विद्वान्। प्रभो०
वीर हो श्रद्धानन्द सरीखा, दे निर्भयता का दान।
मात पिता का आज्ञाकारी हो श्रवणकुमार समान। प्रभो०
राम भरत सा परस्पर प्रेमी हो उत्तम गुण खान।
देश के सारे क्लेश हरे जो, रहकर निरभिमान। प्रभो०
ज्ञानी विद्वान् ईश भक्त हो, हरे सकल अज्ञान।
प्रभो यह बालक हो आयुष्मान्।

तत् पश्चात आशीर्वाद, पुष्पवर्षा करें तथा यज्ञशेष बाटें।

सत्संग भजन

राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु० अ० २२।२२

पद्यानुवाद

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥

होवें दुधारु गौएँ, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ॥

बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्य ताप धोवें ॥

फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

१

ओ३म् है जीवन हमारा, ओं प्राणाधार है।
ओं है कर्ता विधाता, ओं पालनहार है॥
ओं है दुःख का विनाशक, ओं सर्वानन्द है।
ओं है बल तेजधारी, ओं करुणाकन्द है॥
ओं सब का पूज्य है, हम ओं का पूजन करें।
ओं ही के ध्यान से, हम शुद्ध अपना मन करें॥
ओं के गुरुमन्त्र जपने से, रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन प्रति दिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन॥
ओं के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जाएगा।
अन्त में यह जाप हम को मुक्ति तक पहुँचाएगा॥

२

ईश्वर गुलो गुलजार में मैंने तुम्हें देखा।
हर शहर और हर द्वार में मैंने तुम्हें देखा॥
बस्ती में तुम्हें देखा जंगल में तुम्हें देखा।
हर मौसम हर बहार में मैंने तुम्हें देखा॥
महलों में तुम्हें देखा कुटियों में तुम्हें देखा।
राजाओं के दरबार में मैंने तुम्हें देखा॥
गीता में तुम्हें देखा, वेदों में तुम्हें देखा।
ऋषियों के शुद्धाचार में मैंने तुम्हें देखा॥
वीणा में भारती की, बन्शी में कृष्ण की देखा।
ऋषियों के साम गान में मैंने तुम्हें देखा॥
भक्ति में तुम्हें देखा, शक्ति में तुम्हें देखा।
और वीरों की तलवार में मैंने तुम्हें देखा॥

फूलों में तुम्हें देखा, वृक्षों में तुम्हें देखा।
माता के सच्चे प्यार में मैंने तुम्हें देखा॥
सृष्टि का एक कण भी तेरे बिना न देखा।
देखा सदा संसार में मैंने तुम्हें देखा॥

३

हे नाथ तू आनन्दमय, आनन्द की धारा बहा।
आनन्द गंगा में पिता, हम को नहाना नित सिखा॥
तू है पिता माता सखा, तू बन्धु करुणा-सिन्धु है।
यह भावना आनन्दमय, उत्पन्न कर निर्भय बना॥
आपत्ति कितनी घोर हो, तुझ से विमुख छिनभर न हों।
उल्लास से भरपूर कर, तू शोक चिन्ता को भगा॥
विश्वास तेरे नाम पर, तो भी न विह्वलता गई।
तेरे लिए हम सब सहें, तू छाप यों दिल पर लगा॥

४

मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा।
जो सोते हैं उनको जगाएं चला जा॥
निराकार प्रभु है सभी में समाया।
सभी फिर हैं अपने न कोई पराया॥
घृणा फूट मन से मिटाए चला जा।
चुराना नहीं लोभ वश धन किसी का॥
दुखाना नहीं तुम कभी मन किसी का।
ये सन्देश घर घर सुनाए चला जा॥
जगत् युद्ध की ज्वाल में जल रहा है।
प्रवल चक्र अन्याय का चल रहा है॥

मनुजता जगत् को सिखाए चला जा।
मधुर वेद वीणा बजाए चला जा॥

५

विमल इन्दु की विशाल किरणें।
प्रकाश तेरा बता रही हैं॥
अनादि तेरी अनन्त माया।
जगत् को लीला दिखा रही हैं॥
तेरी दया का प्रसार कितना।
जो देखना हो तो देखो सागर॥
तेरी ही महिमा का राग प्यारे।
तरंग - मालाएं गा रही हैं॥
तेरा स्मित जिसने निरखना हो।
वह देख सकता है चन्द्रिका को॥
तेरी ही हंसने की धुन में नदियाँ।
निनाद करती जा रही हैं॥

६. यज्ञ-प्रार्थना

यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएं, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर को तरें॥
अश्वमेधादिक रचाएं यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चला कर लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के संताप सब हरते रहें॥

कामना मिट जाए मन से पाप अत्याचार की।
भावनाएं पूर्ण होवें यज्ञ से नर नारि की॥
लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम-पथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाये मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप ! करुणा आप की सब पर रहे॥

७

जिस देश पर अनुग्रह तेरा अपार होगा,
सब भांति उसका भगवन् शुभ संस्कार होगा।
जिस देश में कलह की ज्वाला रहे दहकती,
शुभ कामना का उसमें, कैसे प्रचार होगा॥
निज देश भेष भाषा भूले रहें जहां पर,
उसकी कुरीतियों का कैसे सुधार होगा।
वेदोक्त कर्म करना जिस देश में कठिन हो,
परलोक पथ का उसमें कैसे विचार होगा॥
वैदिक धर्म की नौका मंझधार में बही थी,
क्या जानते थे उसका कोई कर्णधार होगा।
वह आत्मा ऋषि की सद् ज्ञान की प्रभा थी,
अज्ञान का न जिसमें कुछ अन्धकार होगा॥
भारत हमारी जननी तू है पिता हमारा।
तेरी दया से इसमें सुख सब प्रकार होगा॥

८

आज मिल सब गीत गावें उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं गंधर्व गुणीजन धन्यवाद॥
मन्दिरों में कन्दरों में पर्वतों के शिखर पर।
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं गुणीजन धन्यवाद॥
करते हैं जंगल में मंगल, पक्षीगण हर शाख पर।
देते हैं लगातार सौ सौ बार स्वरं भर धन्यवाद॥
कूए में तालाब में सिन्धु की गहरी धार में।
प्रेमरस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद॥
शादियों में जलसयों में यज्ञ और उत्सव के बाद।
मीठे स्वर से चाहिए करें नारी नर सब धन्यवाद॥
गान कर अमीचन्द, भजनानन्द ईश्वर की स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं, श्रोता कान धर धर धन्यवाद॥

९

प्रभु जी मेरे अवगुण दूर करो,
सच्चिदानन्द है नाम तिहारो, मन में आनन्द भरो।
मन चंचल तुझ में टिक जावे, बुद्धि विवेक से प्रेम बढ़ावे।
प्राणों में शक्ति भरो। प्रभु जी०
तेरी लगन में मगन रहूं मैं, मन वाणी से नमन करूं मैं।
ध्यान की वृत्ति करो। प्रभु जी०
तेरी कला चहुं ओर निहारूं, उसपे अपना तन मन वारूं।
मन में सदा विचरो। प्रभु जी०
मित्र दृष्टि से देखूं सब को, स्नेहभाव से पेखूं सब को।
द्वेष का भाव हरो। प्रभु जी०
ज्ञान कर्म का मेल कराके, सत्य ज्ञान की ज्योति जगा के।
जीवन धन्य करो। प्रभु जी०

१०

कैसे जाओगे भव से पार, कभी तो सोच ले।
कैसे मिले प्रभु का पार, कभी तो सोच ले।।
जीवन नैय्या बहती जाए, कौन खिवैया कहती जाए।
अटक रही मंझधार। कभी तो०
काम सतावे क्रोध डरावे, मोह पंक में फिसल न जावे।
तृष्णा की पड़ रही मार। कभी तो०
प्रभु से पाई यह तन गाड़ी, उसकी तूने गति बिगाड़ी।
विषयों का भर के भार। कभी तो०
भोग के कारण धन है कमाया, जीवन अपना व्यर्थ गंवाया।
छोड़ा सत्य व्यवहार। कभी तो०
धर्म गंवाया धन है लुटाया, कांच के बदले हीरा लुटाया।
कैसा किया व्यापार। कभी तो०
गुण ईश्वर के निशदिन गाएं, जीवन अपना शुद्ध बनाएं।
होगा तभी उद्धार। कभी तो०

११

तेरा ओ३म् नाम है प्यारा।
ओ३म् नाम सब शुद्ध बनाता।
ओ३म् नाम है सब सुखदाता।
बहे ज्ञान की धारा। तेरा०
ओ३म् नाम योगी जन ध्यावें।
ओ३म् नाम से आनन्द पावें।
कटे जन्म की कारा। तेरा०
ओ३म् हृदय में ज्योति जगाए।
पाप पंक से हमें बचाए।

अमृत की उमगे धारा। तेरा०
ओ३म् नाम मन में जब आए।
हाथों से शुभ कर्म कराए।
खुले मुक्ति का द्वारा। तेरा०

दीवाली ज्योति-पर्व मनाएं

१२

सब मिल गीत खुशी के गाएं।
आओ ज्योति पर्व मनाएं।
फैली अज्ञान निशा है काली।
मरती इससे जीवन डाली।
ज्ञान-प्रभा प्रकटाएं। आओ०
स्नेह भरे हों जन-मन सारे।
सत्य प्रभा से हों उजियारे।
वैदिक-पथ अपनाएं। आओ०
विरजानन्द ने स्नेह बढ़ाया।
दयानन्द-जीवन-दीप जगाया।
दीप से दीप जगाएं। आओ०
ऋषि ने वैदिक-प्रभा फैलाई।
अपनी ज्योति प्रभु में मिलाई।
ज्योति से ज्योति पाएं। आओ०
पाप निशा की चादर फैली।
हो गई दुनिया इससे मैली।
बनें शुद्ध और शुद्ध बनाएं। आओ०
तम की मारी दुनिया सारी।
भारत-माता है दुखियारी।
विद्यामृत से सुख बरसाएं। आओ०

प्रभु-प्रेम से पूरित मन हो।
सत्य-न्याय आधारित तन हो।
त्याग-मार्ग दर्शाएं। आओ०
सच्चा धन प्रभु देना सब को।
श्रद्धा भरा मन देना सब को।
सब मिल मोद मनाएं। आओ०

मीठा बोलो १३

बोल सको तो मीठा बोलो, कटु बोलना मत सीखो।
खिला सको तो फूल खिलाओ, शूल बिछाना मत सीखो॥
दिखा सको तो पथ दिखलाओ, कुपथ दिखाना मत।
जब बोलो तो सत्य ही बोलो, झूठ बताना मत॥
बचा सको तो जीव बचाओ, धन को बचाना मत।
मिटा सको तो वैर मिटाओ, प्रेम मिटाना मत॥
मार सको तो मन को मारो, जीव मारना मत॥
हार सको तो द्वेष से हारो, मन से हारना मत॥
बहा सको तो नीर बहाओ, रक्त बहाना मत॥
हटा सको तो अज्ञान हटाओ, ज्योति बुझाना मत॥

उद्धार करो १४

उद्धार करो भगवान्, शरण में आन पड़े।
भव पार करो भगवान् शरण में आन पड़े॥
पंथ पंथ की सुनकर बातें,
द्वार तेरे तक पहुंच न पाते।
भटकें बीच जहान। शरण में०
तुम्हीं दया के हो भण्डारी।
तुही कहाता न्यायकारी।
तुम्हीं हो करुणा-निधान। शरण में०



अमृत बरस रहा १५

बरस रहा बरस रहा चहुं ओर अमृत बरस रहा।
तरस रहा मुख मोड़ मूरख तरस रहा।
भोर भई उठ आंखें खोलो, ओम् प्रभु की जय जय बोलो।
चमकी उषा सब ओर अमृत बरस रहा।
पूर्व दिशा की ओर निहारो, रवि-प्रभा पर तन मन वारो।
फैल रही बिन शोर। अमृत बरस रहा०
बाहिर के पट बन्द करो जी, अन्तःकरण आनन्द भरो जी।
नाचे मन का मोर। अमृत बरस०
अपने मन में भक्ति लाके, आत्म ज्ञान की शक्ति पाके।
धर्म का पकड़ें छोर। अमृत०
मन मन्दिर को शुद्ध बनावें, वेद ज्ञान की ज्योति जगाएं।
कटे तिमिर की डोर। अमृत०
बिन तप जीवन कच्चा है, वेद ज्ञान ही सच्चा है।
देता मन झकझोर। अमृत०
वेद पढ़ें और वेद पढ़ावें, यज्ञ करें और यज्ञ कराएं
चलें प्रभु की ओर। अमृत०

१६

सुन सुन वाणी वेद की जीवन में लो ढाल।
आज्ञा मानो ऋषियों की हवन करो दो काल।
आज्ञा मानो ऋषियों की सन्ध्या करो दो काल॥
प्रातःकाल उठो विस्तर से जपो ओम् का नाम।
ओम निहारो हृदय में, यहीं है उसका धाम।
विषयों में फंस कर के मूरख चलो न उल्टी चाल॥
काम क्रोध मद लोभ का कभी न देना साथ।

दुष्ट जनों का जीवन में कभी न पकड़ो हाथ ।
छोड़ झमेले दुनिया के, आज्ञा प्रभु की पाल ॥
ओम नाम के जाप से मिटे हृदय की प्यास ।
ओम नाम के सिमरण से मन का बढ़े उल्लास ।
प्रेमी गीत प्रेम के गाया कर दो काल ॥
सुन सुन वाणी वेद की जीवन में लो ढाल ।

शान्ति पाठ का मन्त्र

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-रोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि यजु० ३६।१७।

भावार्थ—

शान्ति का अर्थ नियम पालन व्यवस्था तथा समता है । इस मन्त्र से ईश्वर से यह प्रार्थना की गई है कि जो समता अथवा व्यवस्था सूर्य चन्द्र आदि में, पृथिवी में, अन्नादि में, वृक्षादियों में, समस्त दिव्य शक्तियों, अग्नि, जल, वायु आदि में, परम ब्रह्म प्रभु में, और भी सब वस्तुओं में जहां-जहां पर शान्ति का निवास है और यहां तक कि स्वयं शान्ति में भी जो शान्ति समता है, शान्तियों की परस्पर अनुकूलता है वह मुझे प्राप्त हो ।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

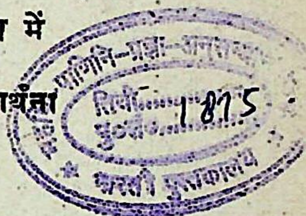
शान्तिः	=	आधिभौतिक शान्ति ।
शान्तिः	=	आधिदैविक शान्ति ।
शान्तिः	=	आध्यात्मिक शान्ति ।

हे ईश्वर हमारे शरीर में, आत्मा में तथा सारे संसार में सदा शान्ति रहे, समता रहे, सुन्दर व्यवस्था रहे ।

शान्ति पाठ

भावार्थ कविता में

शान्ति के लिए प्रार्थना



हे शान्ति स्वरूप पिता मेरे।
मन में शान्ति-सुधा भर दो।
शान्ति शक्ति दोनों हैं बहिनें।
जग में इनका संगम कर दो॥
नभ मण्डल के तारों में। (द्यौः)
चन्द्र सूर्य की कारों में।
जो छाई समता सुन्दर है।
मन प्राणों में सिंचित कर दो॥
अन्तरिक्ष के आँगन में। (अन्तरिक्ष)
खेल खेलती जो घन में।
वह मौन शान्ति कण कण में।
हे देव मेरे वितरण कर दो॥
जो भरी शान्ति वसुधा तल में। (पृथिवी)
प्रकटा करती वृक्षों फल में।
वह मधुर शान्ति सब में भर दो॥
सागर से लेकर मेघ उड़े। (आपः)
जल का भर भर कोष चढ़े।
धरा तरसती उसी शान्ति को।
बरसा कर शीतल कर दो॥
धान भरी यह हरी थालियां। (ओषधयः)
पेड़ों की झूमती डालियां। (वनस्पतयः)

देकर प्रेमभावना इनकी
ब्रह्मांड चंड ज्वाला हर लो
तेरे देव सभी उपकारी। (विश्वेदेवाः)
भरते रहते जीवन क्यारी
जो साम्य सुधा उनकी प्रेरक।
उसका ही सब को वर दो।
तू ब्रह्म शांति का कोष बड़ा। (ब्रह्मशांतिः)
आनन्दलोक को ओड़ खड़ा।
उस परम शांति की मधुर गंग
मेरे मानस घट में भर दो।
तुम शांतिराज के शासक हो,
मैं तेरे राज्य में आई हूं। (सर्वम्)
सभी ओर से शांत करोगे,
आशा मन में लाई हूं।
शांत हृदय हो मन भी सदय हो
जग के द्वन्द्व छन्द हर लो।
बार बार है विनय हमारी।
अंतर ज्वाला हरो संसारी
ऊपर नीचे दायें बायें
सभी ओर शांति कर दो
} शांतिरेव शांतिः सामा शांतिः
तन की मन की और देव की
तीन व्यथाएँ हैं जग की
मिट जाएं सुख पाएं
} शांतिः शांतिः शांतिः।
ऐसी प्रभु करुणा कर दो।

□□□


तिथि......1815
पुस्त०......

आर्यसमाज के

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ वि
का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, नि
दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्वि
सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी,
पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक
सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिएँ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें।

—महर्षि दयानन्द